हमारे मूल कर्तव्य

भारत

डॉ0 विजय नारायण मणि त्रिपाठी

प्रकाशक
सांस्कृतिक गौरव संस्थान
Sanskritik Gaurav Sansthan

प्रथम संस्करण : 2006

© सांस्कृतिक गौरव संस्थान

सहयोग राशि : 80.00 रुपये

प्रकाशक :

सांस्कृतिक गौरव संस्थान

Sanskritik Gaurav Sansthan

मुद्रक :

ऋषि एन्टरप्राइजेज़ द्वारा कैक्स्टन प्रैस, नई दिल्ली–110055 में मुद्रित दूरभाष : 9868872955

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	भूमिका	
	प्राक्कथन	
1.	ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	6
2.	भारत का संविधान	12
3.	मूल अधिकार	18
4.	मूल कर्तव्यों का अंतर्राष्ट्रीय उद्‌भव	25
5.	मूल कर्तव्य	31
6.	संविधान का पालन और राष्ट्र ध्वज तथा राष्ट्रगान का आदर	33
7.	स्वतंत्राता संघर्ष के प्रेरक आदर्श	46
8.	देश की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा	48
9.	देश की रक्षा का कर्तव्य	50
10.	भ्रातृत्व की भावना और स्त्रियों का सम्मान	52
11.	देश की सामासिक संस्कृति का परिरक्षण	57
12.	पर्यावरण की रक्षा	61
13.	वैज्ञानिक दृष्टिकोण	80
14.	सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा और हिंसा से विरत रहना	84
15.	उत्कर्ष लाने का प्रयास	94
16.	बालकों को शिक्षा का अवसर प्रदान करना	97
17.	मूल कर्तव्यों की प्रकृति और महत्त्व	100
18.	मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता (लागू किया जाना)	102
19.	मूल कर्तव्यों के व्यापक प्रचार की आवश्यकता	105
20.	उपसंहार	109

भूमिका

एक लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष के पश्चात् भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ और अपनी संविधान सभा द्वारा संविधान का निर्माण करके 26 जनवरी, 1950 को गणतंत्र राज्य बना। संविधान द्वारा देश में संसदीय लोकतंत्र और संघ–राज्य की स्थापना की गई और देश के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता का अधिकार प्रदान किया गया। देश की पराधीनता के काल में राष्ट्रीय आन्दोलन में राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग के साथ नागरिक अधिकारों की मांग सतत होती रही। अतएव देश की स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान में मूलभूत नागरिक अधिकारों का समावेश किया जाना था। दूसरे, संविधान निर्माण के कार्य के संविधान सभा में चलते रहने के दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को सन् 1948 में अंगीकार किया गया। इसमें अनेक मानव अधिकारों को मान्यता दी गई। इसे राज्यों द्वारा अपने संविधानों/विधियों में समाविष्ट करना अपेक्षित था। इस पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान में नागरिक अधिकारों का "मूल अधिकार" के नाम से एक पूरा भाग अर्थात् भाग 3 समाविष्ट किया गया। बाद में यह अनुभव किया गया कि राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने तथा देश के सामाजिक, आर्थिक उत्थान के लिए नागरिकों के कर्तव्यों का होना भी आवश्यक है। इसलिए सन् 1976 ई0 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा उसमें एक पूरा भाग अर्थात् भाग 4क जोड़ा गया। उसमें नागरिकों के दस मूल कर्तव्य उल्लिखित किए गए। बाद में संशोधन द्वारा उसमें एक और कर्तव्य जोड़ा गया। सरकार द्वारा मूल कर्तव्यों पर गठित एक समिति ने अभी उसमें दो और कर्तव्यों को जोडने का सुझाव दिया है। वस्तुतः राष्ट्र निर्माण और देश के सामाजिक–आर्थिक उत्थान के लिए नागरिकों द्वारा जो कुछ किया जाना अपेक्षित है वह सभी उनका कर्तव्य है। सम्प्रति मूल कर्तव्यों को न्यायालय द्वारा लागू किए जाने योग्य नहीं बनाया गया है, तथापि न्यायालयों द्वारा उन्हें प्रकारान्तर से लागू किया जाना प्रारंभ कर दिया गया है।

आवश्यकता यह है कि मूल कर्तव्यों का व्यापक प्रचार कर उन्हें लोगों को हृदयंगम कराया जाए। यह कार्य सरकार तथा गैर सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं दोनों द्वारा किया जाना अपेक्षित है।

यह उल्लेखनीय है कि भारत में राष्ट्र की संकल्पना और उसके उत्थान के लिए व्यक्तियों के कर्तव्यों का उल्लेख वेदों के काल से ही किया गया है। संविधान में उल्लिखित कर्तव्य भारतीय संस्कृति के अंग हैं। देश की पराधीनता के काल में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों एवं मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया और उनमें धूमिलता आई तथापि मूल्य और मान्यताएं देश के नागरिक जीवन का अभिन्न अंग रही हैं, इसने ही इस राष्ट्र को अनेकानेक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रखा है। वस्तुतः स्वतंत्रता आन्दोलन के मूल में देश के अतीत गौरव का भान और तज्जनित राष्ट्रीय स्वभिमान की भावना की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अतएव अन्य बातों के साथ देश के प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों का प्रचार–प्रसार मूल कर्तव्यों के पालन में महत्त्वपूर्ण योगदान करेगा।

प्रस्तुत लघु ग्रंथ में मूल कर्तव्यों की व्याख्या की गई है और राष्ट्र निर्माण और देश के सामाजिक–आर्थिक उत्थान के लिए उन की नितान्त आवश्यकता और नागरिकों द्वारा स्वेच्छा से उनका पूर्ण रूप से पालन किए जाने के लिए अन्य बातों के साथ भारत के सांस्कृतिक मूल्यों और मान्यताओं को पुनःजागृत करने के महत्त्व को दर्शाया गया है।

आशा है कि ग्रंथ सुधी पाठकों को अपने मूल कर्तव्यों से अवगत कराने के साथ ही उनमें उनके पालन की भावना उत्पन्न करेगा। ऐसा करने में इसके द्वारा थोड़ा भी योगदान हुआ तो इस ग्रंथ को तैयार करने में लेखक अपने परिश्रम को सार्थक मानेगा।

2 पौष सं 2062 वि.
दिनांकः 17.12.2005 ई.

विनीत
डॉ0 विजय नारायण मणि त्रिपाठी
दिल्ली

बी–181 सूर्यनगर
गज़ियाबाद–201011
(उत्तर प्रदेश)

प्राक्कथन

सन् 1976 ई0 में भारत के संविधान के 42वें संशोधन द्वारा उसमें भारत के नागरिकों के दस मूल कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क के रूप में जोड़े गए थे, किन्तु अनेक दशक बीत जाने के पश्चात् भी उन मूल कर्तव्यों के पालन के प्रति कोई सजगता दिखाई नहीं दी। इस पृष्ठभूमि में 17 दिसम्बर, 1997 को सांस्कृतिक गौरव संस्थान का एक न्यास के रूप में पंजीकरण हुआ। इस संस्थान की स्थापना से संबद्ध चिंतकों और विचारकों के ध्यान में देश की ऐसी अवस्था थी जिससे सड़न के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और वे अब भी विद्यमान हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

- सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वाभिमान में भारी पतन।
- मानवीय मूल्यों में चिंताजनक ह्रास।
- धर्म का निर्देशक प्रभाव, कर्तव्य–परायणता का भाव, विधि के प्रति सम्मान, ईश्वरत्व के प्रति श्रद्धाभाव आदि का तेज़ी से लुप्त होना।
- स्वाधीनता का अर्थ अनैतिक कार्यों के लाइसेंस का रूप लेना।
- आत्मारहित राजनीतिबाज़ ऊँचे पदों पर चुने जाने के लिए कुछ भी करने को तैयार।
- वोट बैंक को बनाए रखने के लिए घृणा फैलाने का अभियान चलाया जाना।
- छोटी–मोटी राजनीतिक दुश्मनियों के द्वारा गाँवों के भाई–चारे को बुरी तरह कुचला जाना।
- समय की कसौटी पर खरे उतरे हमारे वैदिक आदर्शों की खिल्ली उड़ाना, प्रगति और आधुनिकता की पहचान बन जाना तथा हमारी प्राचीन मूल्य प्रणाली, हमारी आचरण संहिता और संस्कृति के पालन को पिछड़ेपन का और प्रतिक्रियावादी रूप दिया जाना।
- बहुसंख्यक समुदाय–हिन्दुओं की निन्दा करना, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोगों के लिए एक फैशन सा बन जाना।
- शैक्षिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम स्वामी विवेकानन्द के इस उद्घोष "मानव निर्मातृ शिक्षा और राष्ट्रनिर्माता मानव" से दूर होना।
- भारत भूमि का जो **'सत्यमेव जयते' की भूमि थी** विश्व के सबसे अधिक भ्रष्ट देशों में शामिल होना।
- एक सुसंगठित अभियान, जो बाहर से नियंत्रित है और जिसे भीतर से हवा और ईंधन दिया जा रहा है, उसके चलाए जाने के स्पष्ट, साक्ष्य मिले हैं, जिससे भारत की संप्रभुता, एकता, अखण्डता और सुरक्षा को चुनौती देने के साथ–साथ भारत को अस्थिर और यहाँ तक कि खण्डित किया जा सके।
- भारत को राष्ट्रों के समुदाय में सामान्यतः कम सम्मान मिलता है। दूषित सूचना, अपप्रचार, असत्य सूचनाओं का एक योचनाबद्ध अभियान उन विषयों के विरुद्ध चल रहा है जो राष्ट्रीय स्वाभिमान को संजीवनी देने का काम दे सकते हैं।
- विदेशी और देशी जन–संचार माध्यमों (दूरदर्शन, विडियो आदि) में विदेशी जीवन शैलियों (टूटे हुए परिवार, बडों का अपमान, विवाहेतर संबंध, नशीली दवाइयाँ और हिंसा) को बड़े गर्व से दिखाया जा रहा है। यह भुला दिया गया है कि जब कोई मज़हब किसी अन्य मत के अनुयायियों का मत परिवर्तन का काम करता है तो वह मज़हब की सीमाओं को लाँघता है और राजनीति के खतरनाक साम्राज्य में प्रवेश करता है।

• स्वदेशी परम्पराओं और रीति–रिवाज़ों विशेषतः वनवासियों और गिरिजनों के रीति–रिवाज़ों के प्रति सम्मान का लोप हो रहा है जबकि वे इस पुण्य–भूमि के मूल्यवान् पुत्रों और पुत्रियों से किसी भी तरह कम मूल्यवान् नहीं हैं। वस्तुतः वे हमारे विलक्षण राष्ट्रीय स्वभाव के अभिन्न अंग हैं।

• उन संस्थाओं को योजनाबद्ध रूप से नष्ट किया जा रहा है जो लोकतंत्र को सार्थक बनाती हैं। नौकरशाही को साहसहीन बना दिया गया है और उनको राजनीति का मोहरा बनाया गया है जब कि राजनीति अपराधियों के चंगुल में फँस गई है।

इस पतन को रोकने की आवश्यकता बताने की आवश्यकता नहीं है। सांस्कृतिक गौरव संस्थान का जन्म मत–निर्माता निकायों का एक समूह तैयार करने के लिए हुआ था जिससे अराजकता और अव्यवस्था के बढ़ाव को रोका जा सके और राष्ट्र के प्रति जवानों और बूढ़ों के जो कर्तव्य हैं, उन्हें उनकी याद कराने के लिए क्षेत्र में उतारा जा सके ताकि वे देवभूमि भारत के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें।

उल्लेखनीय है कि पुस्तक के लेखक न केवल कानून में पी एच. डी. धारी तथा वरिष्ठ विधि विशेषज्ञ हैं अपितु भारतीय संस्कृति के बहुपठित विद्वान् हैं, जो स्वयं भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के जीवंत रूप हैं।

हमारी जानकरी के अनुसार इन कर्तव्यों का विवेचन करने वाली कोई पुस्तक अभी तक भारत की किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुई है।

इस पृष्ठभूमि में भारत के नागरिकों के कर्तव्यों का विवेचन करने वाली यह पुस्तक विद्वज्जनों और चिंतकों के लिए न केवल प्रेरणादायक होगी बल्कि एक प्रकाश स्तंभ की भांति सिद्ध होगी, ऐसा हमारा पक्का विश्वास है।

2 पौष, सं. 2062 वि.
17.12.2005 ई.

विनीत
डॉ. महेश चन्द्र
(महामंत्री)

हमारे मूल कर्तव्य

अध्याय – 1

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यह सर्वविदित है कि कालचक्र अनवरत रूप से गतिमान रहता है। इससे व्यक्तियों के समान ही राष्ट्रों के जीवन में भी उत्कर्ष आौर अपकर्ष आते रहते हैं। इस अटल नियम के कारण भारत जो कभी विश्व का गुरु था और विश्व को ज्ञान का प्रकाश देता था, जिसने विश्व बंधुत्व की भावना और मानवता का संदेश और आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की थी उसे पराभव का मुख देखना पड़ा। राम, कृष्ण और बुद्ध जैसे अवतारी पुरुषों के देश को हनुमान, भीष्म, भीम, और अर्जुन जैसे महावीरों के देश को व्यास, बाल्मीकि, कालिदास, और भवभूति जैसे कवियों के देश को, नृग, शिवि, रन्तिदेव और दधीचि ऐसे दानियों के देश को भृगु, शुकदेव, वसिष्ठ, धौम्य, वेद व्यास, भरद्वाज, वामदेव, सनकादि एवं सप्तर्षियों के देश को भरत, मान्धाता, नहुष, अशोक, चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त जैसे सम्राटों के देश को, जनक, विक्रमादित्य, हरिश्चन्द्र और राजा भोज जैसे न्यायप्रिय राजाओं के देश को मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, नारद, पराशर जैसे विधि संहिताकारों और कौटिल्य जैसे राजनीतिशास्त्र–विदों के देश को कपिल, पतंजलि, गौतम, कणाद और जैमिनी जैसे दार्शनिको के देश को पाणिनी, कात्यायन, गर्ग, शाकल्य जैसे वैयाकरणों के देश को धन्वंतरि, चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेद विज्ञानियों के देश को आर्यभट्ट, वराहमिहिर, महावीराचार्य, ब्रह्मगुप्त जैसे खगोल शास्त्रियों और ज्योतिषविदों के देश को, सिंधु, गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा, और कावेरी जैसी पुण्यतोया नदियों से सिंचित देश को काशी, अयोध्या, प्रयाग, पुष्कर, वृन्दावन, कैलास, रामेश्वरम्, द्वारका, बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी, नालंदा जैसे तीर्थस्थलों वाले देश को, टक्सिला (तक्षशिला) और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों वाले देश को और हिमालय की छत्रछाया प्राप्त और तीन सिंधुओं में आवेष्टित देश को संक्षेप में ज्ञान–विज्ञान, कला, दर्शन, साहित्य आदि की नाना विधाओं के शीर्षस्थ चिंतकों, विचारकों और विद्वानों तथा प्राकृतिक सम्पदा और वैभव से सम्पन्न देश को पराधीनता का दुःख झेलना पड़ा। पहले मुसलमानों और बाद में अंग्रेज शासकों के अधीन प्रायः आठ सौ वर्षों तक देश पराधीनता की बेंड़ियों में पड़ा रहा। तथापि अपने गौरव, स्वाभिमान और त्याग तथा बलिदान के आदर्शों वाले देश ने कभी पूरी तरह आत्म–समर्पण नहीं किया। मुगल काल में राजपूतों का एक वर्ग, मराठे तथा सिक्ख स्वतंत्रता के लिए निरंतर संघर्षरत रहे और वस्तुतः मुगल साम्राज्य के अंतिम काल में सारे भारत पर मराठों का दबदबा रहा। पानीपत के तीसरे युद्ध से उसे धक्का लगा और उसमें बिखराव आया और देश में एक प्रकार की राजनीतिक रिक्ति आई जिसे अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक चालों से हथिया लिया और क्रमशः सारे भारत को अपने अधीन कर लिया। इस ऐतिहासिक घटनाक्रम से जहाँ देश एक बार पुनः विदेशी शासन की अधीनता में आ गया वहाँ एक दूसरी बात यह हुई कि अंग्रेजी भाषा के प्रचार–प्रसार से देश पाश्चात्य विचारों के संपर्क में आया और पूरे देश के एक राजनीतिक तंत्र में आ जाने से देश में एकता और नई राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। इस राष्ट्रीय भावना के उदय में अनेक तत्त्वों ने योगदान किया जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण है।

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने मत व्यक्त किया है कि भारत में किसी आंदोलन को सशक्त होने के लिए उसे धार्मिक आधार पर टिकना होगा। यह पूरी सक्रियता से केवल तभी उभरता है जब वह धार्मिक भावना से अनुप्राणित होता है जो इससे सहानुभूति को प्रेरित करता है। यह सर्वविदित है कि राजनीतिक शक्ति के रूप में सिक्खों एवं मराठों का उदय मुख्य रूप से धार्मिक प्रेरणा से हुआ था। इसलिए यह पूर्णतया समीचीन है कि भारत में किसी नव जागरण का पूर्वगामी कोई बड़ा धार्मिक आंदोलन हो।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक धार्मिक आंदोलन और सामाजिक सुधार हुए। राजा राममोहन राय को सामाजिक सुधारकों में अग्रणी माना जा सकता है। एक वास्तविक मानवतावादी और सुधारक के रूप में

उन्होंने हिन्दू समाज को अंधविश्वास के गर्त और निराशा से उबारना चाहा। इस उद्देश्य से उन्होंने सन् 1830 में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। यह एक आस्तिकतावादी संगठन था जो उन सभी लोगों के लिए खुला था जो एक ईश्वर में विश्वास करते हों और मूर्ति पूजा का त्याग करें। राममोहन राय का आदर्श उपनिषदों की सार्वदेशिकता पर आधृत था। उनके कार्य को देवेन्द्र नाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन आदि ने आगे बढाया और बह्म समाज के प्रभाव को बंगाल के बाहर विस्तृत किया। ब्रह्म समाज ने हिन्दू समाज में नारियों की स्थिति को सुधारने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। महादेव गोविन्द रानडे, आत्माराम पांडुरग, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर आदि ने महाराष्ट्र में 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की। इसमें महाराष्ट्र के लब्ध–प्रतिष्ठ व्यक्ति सम्मिलित हुए। प्रार्थना समाज ने सामाजिक सुधार पर ज्यादा जोर दिया।

इसके गणमान्य संस्थापक सदस्यों में न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे भी थे जैसा ऊपर कहा गया है। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्माण से भी जुड़े हुए थे। यह उनकी अगुवाई में हुआ था कि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के साथ एक सामाजिक सम्मेलन भी हुआ था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। इसका उद्देश्य मूल रूप से वेद आधारित हिन्दू धर्म की पुनर्स्थापना था। आर्य समाज, ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज से इस रूप में भिन्न था कि जबकि पश्चात्–कथित पाश्चात्य युक्तिवाद से प्रेरित थे वहाँ आर्य समाज ने भारत के गौरवशाली अतीत से प्रेरणा ली और उसे अपना आदर्श बनाया। इसका नारा था वेदों की ओर चलो। इस आंदोलन का शीघ्र ही देश में विशेष रूप से पंजाब में प्रचार और प्रसार हुआ। महर्षि दयानन्द के उपदेशों ने देश और इसके अतीत के प्रति गर्व की भावना भरी और लोगों को स्वराज्य का राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया। रामकृष्ण मिशन हिन्दुत्व के पुनर्जागरण में उनसे और आगे था। यह संगठन रामकृष्ण परमहंस के नाम पर है जो एक संत थे और परम आध्यात्मिक और सत्य के साधक और उपदेशक थे। उनके महान् शिष्य विवेकानन्द ने इस मिशन की स्थापना की थी। विवेकानन्द अद्वितीय चिंतन वाले व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि दर्शाई तथा इसके जागरण का बिगुल बजाया। विवेकानन्द के बारे में सबसे अधिक उल्लेखनीय बात, हिन्दुत्व की महानता को पुनर्जागृत करने की उनकी अदम्य उत्कंठा थी। उन्होंने कहा "हमें बाहर जाना चाहिए और हमें विश्व को अपनी आध्यात्मिकता और दर्शन से जीतना चाहिए। उनका यह उच्च आदर्श था। उन्होंने निर्भीकता पूर्वक घोषित किया कि वेदान्त ही मनुष्य जाति का धर्म होगा। प्राचीन वैदिक ऋषियों के उद्घोष "आ नो0 भद्राः कृण्वन्तु विश्वतः" का नवशंखनाद का उनके भाषणों ने भारतीयों में आत्म विश्वास भरा और उदास और उत्साहहीन हिन्दू मस्तिष्क को जीवनी शक्ति प्रदान की। आधुनिक काल में **हिन्दुओं को यह अनुभव हुआ कि उन्हें अपनी संस्कृति और धर्म के बारे में क्षमायाची होने का कोई कारण नहीं है।** सन् 1894 में शिकागो में आयोजित विश्व के धर्मों की संसद् में हिन्दू धर्म और उसके विश्व–व्यापी महत्त्व के बारे में उनके साहसपूर्ण भाषण का सभी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके बारे में एक अंग्रेज ने लिखा है कि विवेकानन्द वह प्रथम हिन्दू थे जिनके व्यक्तित्व ने भारत की प्राचीन सभ्यता के लिए और राष्ट्रत्व के नवोदित दावे को विदेश में निश्चायक मान्यता अर्जित कराई। **थियोसिफिकल सोसायटी ने भी हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।** इसे विदेशियों ने प्रारंभ किया था। उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया यह आन्दोलन यूरोपीय वेश में हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण था। बाद में इसे ऐनी बेसेन्ट ने संचालित किया। इसने पुनर्जागरण के आन्दोलन को, जो भारत में चल रहा था, भारी बल प्रदान किया। उनके उपदेश की मुख्य बात यह थी कि भारत का पुनरुत्थान उसके प्राचीन धार्मिक आदर्शों के पुनर्जागरण द्वारा किया जा सकता है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर उन्होंने बनारस के सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल को प्रारंभ किया जो विकसित होकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय बना। थियोसिफिकल सोसायटी ने इसे बहुत बल प्रदान किया। उसने हिन्दू पुनर्जागरण को बल प्रदान किया और देश में सामाजिक और धार्मिक सुधारों को शक्ति प्रदान की।

इन सामाजिक धार्मिक आंदोलनों ने हिन्दू समाज को भारी रूप में आंदोलित किया। इनसे जहाँ एक ओर अनेक सामाजिक–धार्मिक कुरीतियां दूर हुई वहाँ दूसरी ओर आत्म सम्मान और अतीत के प्रति गर्व की भावना उत्पन्न हुई। यह आगे चलकर देश में राष्ट्रत्व के निर्माण और स्वतंत्रता आंदोलन की आधारशिला

बना। यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के अनेक शीर्षस्थ नेता जैसे महादेव गोविन्द रानडे, बाल गंगाधर तिलक, योगिराज अरविन्द घोष, लाला लाजपत राय, पं0 मदन मोहन मालवीय और स्वयं महात्मा गांधी भी इन भावों, विचारों एवं आदर्शों से अनुप्राणित थे।

इस नव चेतना ने राष्ट्रीय आंदोलन में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना ने देश में स्वतंत्रता की इच्छा बलवती की और इसके लिए देश सक्रिय हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसके लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया। सन् 1857 के देशव्यापी सशस्त्र संघर्ष को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जा सकता है। तत्पश्चात् नागरिक और आदिवासी विद्रोह हुए। फिर किसान आंदोलन और किसान विद्रोह हुए। इसके बाद नील आंदोलन और विद्रोह हुए। तत्पश्चात् दक्खन का विद्रोह हुआ। **तात्पर्य यह कि उपनिवेशवाद के विरुद्ध देश–व्यापी आंदोलन और संघर्ष प्रारंभ हो गए।** इसके साथ ही राष्ट्रवादी विचारधारा का निर्माण और प्रसार शीघ्रता से होने लगा। प्रेस की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ। सन् 1920–22 में असहयोग आंदोलन अस्तित्व में आया। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की गति तीव्र हुई। उत्तर प्रदेश, मलाबार (केरल) और बारदोली (गुजरात) में व्यापक असहयोग आंदोलन हुए। **इस बीच स्वाधीनता के इच्छुक एक उत्साही वर्ग ने सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ कर दिया जो क्रांतिकारी कहलाए।** उन्होंने ब्रिटिश शासन पर भारी दबाव डाला। सन् 1930–31 में सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि **भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन कभी अंतर्मुखी नहीं था। भारतीय नेताओं ने एक व्यापक अंतरर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास किया था जो मूलतः भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की देन थी।**

यह अनुभव किया गया कि भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के लिए उपनिवेशवादी शासन को उखाड़ फेंकना आवश्यक है। **राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप ने एक वैचारिक आयाम भी उत्पन्न किया जिसने भविष्य में भारत की संविधान की रचना में आधार भूमि का काम किया। ये आधार थे लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता, नागरिक अधिकारों के लिए प्रबल आग्रह, आर्थिक विकास की दिशा, समाजवादी रुझान आदि।**

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की यह भी विशिष्टता थी कि यह जनता के त्याग और बलिदान की क्षमता और भारतीय आदर्शों में अगाध आस्था पर आद्धृत था।

सन् 1942 में कांग्रेस ने भारत छोड़ो का नारा दिया और देश में व्यापक आंदोलन हुए। **इस बीच आजाद हिन्द फौज का गठन और उसकी भूमिका ने स्वतंत्रता संघर्ष को बल दिया। इसने ब्रिटिश शासन को हिला दिया।** विश्व युद्ध की समाप्ति पर यह निश्चित हो गया कि भारत को स्वतंत्र होने से रोका नहीं जा सकता। इसके परिणामस्वरूप देश को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए ब्रिटिश सरकार और देश के नेताओं के बीच वार्ता का दौर चलने लगा। इस बीच एक राजनीतिक दल मुस्लिम लीग अस्तित्व में आया जो मज़हब के आधार पर देश का विभाजन चाहता था। **स्वतंत्रता दिए जाने की योजना के अनुसार भारत का संविधान बनाने के लिए नवम्बर 1946 में एक संविधान सभा का गठन हुआ।** इसमें राज्यों की विधान सभाओं द्वारा चुने गए सदस्य और राज्यों द्वारा नाम निर्देशित व्यक्ति थे। संविधान सभा ने अपना कार्य प्रारंभ किया। हिन्दू महासभा व मुस्लिम लीग के सदस्य इसमें सम्मिलित नहीं हुए। अंततः भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 द्वारा भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ और देश का विभाजन भी हो गया। इसलिए हम 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि शान्तिपूर्ण तरीके से यह सत्ता का हस्तांतरण कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। यह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की, जिसका उल्लेख पीछे दिया जा चुका है, रणनीति और उसके स्वरूप की स्वाभाविक परिणति थी जहाँ ब्रिटिश शासकों को यह समझना पड़ा कि अब भारतीय जनता उनके शासन में रहने को बिल्कुल तैयार नहीं है। किन्तु स्वतंत्रता के साथ ही देश का विभाजन भी हो गया, भारत और पाकिस्तान दो देशों के रूप में। **देश खंडित हो गया और इस दुखद ऐतिहासिक घटना का परिणाम**

भारत आज भी भोग रहा है। देश के विभाजन के परिणामस्वरूप संविधान सभा का भी विभाजन हो गया। विभाजन के पश्चात् 31 अक्टूबर, 1947 को भारत की संविधान सभा बुलाई गई।

संविधान सभा ने 31 अक्टूबर, 1947 से कार्य करना प्रारंभ किया। उसने संविधान बनाने का काम 26 नवम्बर 1949 को पूरा कर लिया। संविधान के कुछ उपबंध तो उसी दिन लागू हो गए और शेष उपबंध 26 जनवरी 1950 से लागू हुए और उस दिन भारत पूर्ण गणतंत्र राज्य हो गया।

संविधान के लागू होने अथवा भारत के गणतंत्र होने की तारीख 26 जनवरी को इसलिए चुना गया क्योंकि यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक दिवस है। सन् 1930 ई0 में इसी तारीख को कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा सम्पूर्ण देश में पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाने का निर्णय किया था। उस तारीख अर्थात् 26 जनवरी को, सारे देश में जन सभाओं द्वारा अंगीकृत किए जाने के लिए एक प्रस्ताव जारी किया गया था जो निम्नलिखित है–

"हमारा यह विश्वास है कि भारत के लागों का, जैसा किन्हीं अन्य लोगों का है, यह अविच्छेद्य अधिकार है कि उन्हें अपने श्रम के परिणाम का उपभोग करने की स्वतंत्रता, और जीवन की आवश्यक वस्तुओं को पाने की स्वतंत्रता रहे, जिससे कि उन्हें अपने उत्थान के पूर्ण अवसर मिले। हमारा यह विश्वास है कि यदि कोई सरकार लोगों को इन अधिकारों से वंचित करती है और उनका दमन करती है तो लोगों को आगे एक अधिकार है कि उसे बदल दें अथवा उसे समाप्त कर दें। ब्रिटिश सरकार ने भारत में न केवल लोगों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया है अपितु अपने को जनता के शोषण पर आधारित किया है और भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आौर आध्यात्मिक रूप से बर्बाद किया है। इसलिए हमारा यह विश्वास है कि भारत ब्रिटिश संबंध का विच्छेद करके और पूर्ण स्वराज्य अथवा पूरी स्वतंत्रता प्राप्त करे। भारत को आर्थिक रूप से बर्बाद कर दिया गया है। हमारे लोगों से लिया जाने वाला राजस्व हमारी आय के अनुपात से बहुत बढकर है। हमारी औसत आय प्रतिदिन 7 पैसे (2 पेन्स से कम) है और जो भारी कर अदायगी हम कर रहे हैं उसमें से 20 प्रतिशत भू–राजस्व से आता है जो किसानों से लिया जाता है और 3 प्रतिशत नमक कर से आता है जो गरीबों पर सबसे भारी पड़ता है।

"ग्राम उद्योग जैसे हाथ कताई, नष्ट कर दिए गए हैं जिससे किसान वर्ष में कम से कम चार महीने बेकार बैठा रहता है और हस्त शिल्पों के अभाव में अपनी प्रतिभा को कुंठित करता है और उसके स्थान पर कोई दूसरा काम नहीं लाया गया है जैसा कि अन्य देशों में है क्योंकि कारीगरी नष्ट कर दी गई है।

"आयात कर और मुद्रा को इस प्रकार चालबाजी से गढ़ा गया है जो किसानों पर और अधिक बोझ डालती है। हमारे आयात कर का बड़ा भाग ब्रिटेन में विनिर्मित वस्तुएं हैं। आयात करों में ब्रिटिश विनिर्माताओं के प्रति स्पष्ट पक्षपात दिखाई देता है और उनसे प्राप्त राजस्व का प्रयोग लोगों के बोझ को कम करने के लिए नहीं किया जाता है किन्तु भारी रूप मे अपव्यय–पूर्ण प्रशासन को चलाने के लिए किया जाता है। विनिमय अनुपात और अधिक मनमाना रहा है जिसके कारण देश का धन लाखों में बाहर चला जाता है।

"राजनीतिक रूप से भारत की हैसियत कभी भी इतनी नीची नहीं रही है जैसा ब्रिटिश शासन के अधीन हुआ है। किसी भी सुधार ने लोगों को वास्तविक राजनीतिक शक्ति नहीं दी है। हमारे ऊँचे से ऊँचे व्यक्ति को विदेशी सत्ता के सामने झुकना पड़ा है। विचार की स्वतंत्र अभिव्यक्ति और स्वतंत्र संगठन बनाने के अधिकार हमें नहीं दिए गए हैं और हमारे बहुत से देशवासियों को विदेश में निर्वासन में रहना पड़ रहा है और वे अपने घरों को नहीं लौट सकते। सारी प्रशासनिक प्रतिभा समाप्त कर दी गई है लोगों को ग्राम अधिकारी अथवा लिपिक के तुच्छ पदों से संतुष्ट रहना पड़ रहा है।"

सांस्कृतिक रूप से, शिक्षा प्रणाली ने हमें अपनी परम्परा से अलग कर दिया है और हमारे प्रशिक्षण ने हमें उन जंजीरों का आलिंगन करने वाला बनाया है जो हमें बांधे हुए हैं।

"आध्यात्मिक रूप से, अनिवार्य निरस्त्रीकरण ने हमको पुंसत्वहीन कर दिया है और देश पर आधिपत्य जमाए एक विदेशी सेना की उपस्थिति ने जो हमारी प्रतिरोध की भावना को कुचलने के लिए घातक हथियारों से लैस है, हमें यह विचार करने पर ला दिया है कि हम अपनी देखभाल नहीं कर सकते, अथवा बाहरी आक्रमण के विरुद्ध अपनी प्रतिरक्षा नहीं कर सकते अथवा चोरों, डकैतों और दुर्वृत्त लोगों से अपने घरों और परिवार की प्रतिरक्षा नहीं कर सकते।

''ऐसे शासन की अधीनता में अपने को अब और आगे रखना जिसने हमारे देश की चौतरफा तबाही की है, हम मनुष्य और ईश्वर के प्रति अपराध मानते है। तथापि हमारी मान्यता है कि अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने का सर्वाधिक प्रभावी तरीका हिंसा के माध्यम से नहीं है। **इसलिए हम सभी, जहाँ तक कर सकें, ब्रिटिश सरकार से सभी ऐच्छिक सम्बंधो से अपने को हटा लें और सिविल अवज्ञा के लिए जिसमे करों का न अदा किया जाना सम्मिलित है, तैयारी करें।** हमें यह विश्वास हो गया है कि प्रकोपन के अधीन होने पर भी यदि हम हिंसा के बिना अपनी ऐच्छिक सहायता से हट जाएं और करों की अदायगी बंद कर दें तो इस अमानवीय शासन का अंत निश्चित हो जाएगा। इसलिए हम प्रतिज्ञान–पूर्वक यह संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज की स्थापना करने के प्रयोजन के लिए समय–समय पर कांग्रेस द्वारा जारी किए गए अनुदेशों को कार्यान्वित करेंगे।"[1]

क्योंकि देश ने 26 जनवरी को यह संकल्प किया था कि हम विदेशी शासन समाप्त कर पूर्ण स्वराज की स्थापना करेंगे अतएव स्वतंत्रता प्राप्त होने और अपना संविधान बना लिए जाने पर उसके लागू होने की तारीख 26 जनवरी रखी गई। संविधान के प्रावधानों के अनुसार उक्त तारीख को भारत गणतंत्र राज्य हुआ अतएव प्रतिवर्ष 26 जनवरी गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

उक्त संकल्प को ऊपर समूचे रूप से उद्धृत किया गया है जिससे यह ज्ञात हो सके कि विदेशी शासन में देश की क्या दुर्दशा थी और वह किस प्रकार से आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अवनति को प्राप्त हो गया था। दूसरे, इससे यह भी ज्ञात होगा कि किन आदर्शों को लेकर देश ने स्वतंत्रता प्राप्त की थी। उक्त आदर्शों को जानने से नागरिकों के मूल कर्तव्यों को समझने में सहायता मिलेगी। विशेष रूप से उस मूल कर्तव्य को जो यह विहित करता है कि भारत का प्रत्येक नागरिक स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

(इन्द्रियजय का मूल)

इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः।। 5।।

विनय ही इन्द्रियों पर विजय पाने का मुख्य साधन है।

विवरण– विनीतों की संगत में रहकर उनसे शासनसम्बन्धी सत्यासत्य का विचार सीखकर सत्य को पहचान कर, सत्य के माधुर्य से मधुमय होकर, अहंकार त्यागकर सत्य के बोझ के नीचे दबकर नम्र हो जाना विनय अर्थात् सत्याधीन हो जाना है। पात्रापात्र परिचय, व्यवहार कुशलता, सुशीलता, शिष्टाचार, सहिष्णुता उचितज्ञता, न्यायान्यायबोध तथा कार्याकार्य विवेक आदि सब विनय के ही व्यावहारिक रूप हैं।

विनयी मनुष्य की इन्द्रियां उसकी सुविचारित स्पष्ट आज्ञा के बिना संसार में कहीं एक पैर भी नहीं डालतीं। उसकी इन्द्रियों के पैरों में शर्म की वह भारी शृंखला पडी रहती है जो उन्हें कुमार्ग में जाने ही नहीं देती। नम्रता सुशीलता आदि सब विनीत मन के धर्म हैं। मन के धर्मपरायण होते ही इन्द्रियां अपने आप विजित हो जाती अर्थात् विजित मन के प्रति आत्मसमर्पण करके रहने लगती हैं। विनयी मानव अपनी स्थिरता तथा धीरता के प्रभाव से अपनी इन्द्रियों पर वशीकार पाकर रहता है। अविनीत मनुष्य अविमृश्यकारी होता है। उसकी इन्द्रियां प्रत्येक समय उसे अधिकारहीन तथा अनुचित भोगों के लिए उत्तेजित करती रहती हैं। राज्याधिकारी लोग अपने विनय से ही राष्ट्र के लोक मत को वश में रख सकते हैं। इतिहास बताता है कि बहुत से राजा लोग अविनय से ऐश्वर्यसहित ध्वस्त हो चुके हैं। इसके विपरीत बहुत से लोग विनय के कारण झोंपडों के निवासी होकर भी राज्य पाकर गए हैं। इसलिये राज्याधिकारी लोग पवित्र ज्ञानवृद्धों की संगत किया करें और उनसे विनय सीखकर विनीत बनें। यदि वे विनीत नहीं बनेंगे तो वे मस्तक से माला को उतार फेंकने वाले मस्त हाथी के समान

राज्यश्री को नष्ट–भ्रष्ट कर डालेंगे। विनय के बिना उनकी स्वेच्छाचारिता रुकना असंभव है और उसके रहते हुए उनका राज्य खो बैठना सुनिश्चित है।

चाणक्य सूत्राणि

भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार **– स्व. श्री रामावतार विद्या भास्कर**
डाकघर – स्वाध्याय मंडल (पारडी) जिला (सुरत) गुजरात

अध्याय – 2

भारत का संविधान

भारत के संविधान को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक है। यह पृष्ठभूमि अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्वरूपों की है। पिछले अध्याय में देश में स्वतंत्रता आंदोलन के लक्ष्यों पर प्रकाश डाला जा चुका है। जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि का प्रश्न है, यह ज्ञातव्य है कि अमेरिकी क्रांति के पश्चात् वहाँ के संविधान का निर्माण हुआ जिसमें व्यक्तियों के अधिकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। तत्पश्चात् फ्रांस की राज्य क्रांति ने भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्त्व को स्थापित किया। इस काल में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों, राजनीतिक–आर्थिक और समाज–शास्त्रीय शोधों ने प्रत्येक क्षेत्र में नवीन मूल्यों की स्थापना की। **वैज्ञानिक आविष्कारों ने अनेक रूढ़िवादी मान्यताओं को समाप्त किया।** दूरी को कम कर देशों और लोगों को निकट लाने में योगदान दिया और जिससे विचारों, संस्कृतियों एवं सभ्यताओं को विश्वजनीन होने या उनके विश्वजनीन रूप को समझने में सहायता मिली। औद्योगिक विकास ने लोगों के रहन–सहन के स्तर को तत्पश्चात् फ्रांस की राज्य क्रांति ने भी व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्त्व को स्थापित किया। ऊँचा किया और भविष्य में अनेक संभावनाओं के द्वार खोले। दार्शनिक और समाज–शास्त्रीय चिंतनों ने अनेक नए मानव–मूल्यों की स्थापना की। इसने सामाजिक न्याय का आग्रह प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में राजनीतिक चिंतन ने राज्य के कार्यक्षेत्र का अतिशय विस्तार किया और कल्याणकारी राज्य की संकल्पना प्रस्तुत की। साम्यवादी और समाजवादी सिद्धातों ने आर्थिक कार्यकलापों में राज्य की अभिभावी भूमिका विशेषतः उत्पादन के साधनों एवं वितरण पर जोर दिया। इस बीच संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई और उसके द्वारा 1948 में मानव–अधिकारों की सार्वभौम घोषणा हुई। इन सारी बातों ने द्वितीय विश्व–युद्ध के पश्चात् निर्मित होने वाले संविधानों पर, जिनमें भारतीय संविधान भी है, प्रभाव डाला।

राष्ट्रीय जागरण एवं तत्कालीन अन्य परिस्थितियों ने भी संविधान के निर्माण की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य किया। देश में स्वतंत्रता आंदोलन का ध्येय विदेशी सत्ता को समाप्त करने के साथ ही एक रचनात्मक लक्ष्य भी था और वह उद्देश्य था देश का सामाजिक, आर्थिक उत्थान और सामाजिक न्याय की उपलब्धि। भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करने से उसमें अंतर्विष्ट प्रावधानों पर प्रकाश पड़ सकता है। भारतीय संविधान की विशेषताएं अग्रलिखित हैं:–

(1) **संविधान की उद्देशिका**–संविधान की उद्देशिका उन लक्ष्यों और आदर्शों को बीज रूप में अधिकथित करती है जिसे प्राप्त करना राष्ट्र ने अपना लक्ष्य निर्धारित किया। वह इस प्रकार है:

"हम, भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरक्षेप लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को: सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई0 (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत् 2006 वि0) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

इस प्रकार भारत का संविधान देश में प्रभुत्व–संपन्न, लोकतंत्रात्मक, पंथ–निरपेक्ष, समाजवादी गणराज्य की स्थापना करता है। संविधान के मर्म को समझने के लिए इन पदों का संक्षेप में अर्थ दिया जाना आवश्यक है। प्रभुत्व–संपन्न से तात्पर्य है कि देश अब सभी बाह्य नियंत्रणों से मुक्त होकर अपनी विदेश और आंतरिक नीति स्वयं निर्धारित करता है। लोकतंत्रात्मक पद का अर्थ है कि देश में ऐसी सरकार है जिसका समूचा प्राधिकार जनता में निहित है और जो जनता के लिए तथा जनता द्वारा बनाई गई है। पंथ–निरपेक्ष राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो किसी विशेष पंथ को राज्य के पंथ के रूप में मान्यता नहीं देता अपितु राज्य के भीतर सभी पंथों से समान रूप से व्यवहार करता है। **समाजवाद शब्द की कोई सर्वमान्य परिभाषा या व्याख्या नहीं है। इसका संक्षेप में अर्थ है कि देश के नागरिकों के बीच आय का अंतर कम से कम हो और धन केवल कुछ लोगों क हाथों में केंद्रित न हो। गणराज्य से तात्पर्य है कि सरकार का कोई पद किसी को वंश परम्परा के आधार पर नहीं**

मिलेगा बल्कि देश के सभी नागरिकों को उसके लिए अपेक्षित योग्यता के आधार पर प्राप्त होगा।

यह सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने का लक्ष्य निर्धारित करती है। इसे प्राप्त करने के लिए और लोगों में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढाने का लक्ष्य निर्धारित करती है। उद्देशिका में बीज रूप में कथित इन लक्ष्यों को संविधान के प्रावधानों में विस्तार से अंतर्विष्ट किया गया है।

(2) **विश्व का सबसे बड़ा संविधान**–भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। इसके निर्माण के समय इसमें कुल 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों में विभाजित थे। इसके अतिरिक्त संविधान मे 9 अनुसूचियां थीं। तथापि इसके पश्चात् इसमें अनेक संशोधन होते चले गए हैं। **सम्प्रति इसमें 444 अनुच्छेद हैं जो 26 भागों में विभाजित हैं और इसके अतिरिक्त इसमें अब 12 अनुसूचियां हैं।**

संविधान का इतना बड़ा कलेवर होने के कारण ये हैं कि संविधान निर्माताओं ने विश्व के अनेक प्रजातांत्रिक देशों के संविधानों को विचार में लेते हुए उनमें से अनेक बातें लेकर अपने संविधान में समाविष्ट किया। जैसे **अमेरिका के संविधान से मूल अधिकार, ब्रिटेन के संविधान से संसदीय प्रणाली, आयरलैंड के संविधान से राज्य के नीति निदेशक तत्त्व, जर्मनी के संविधान तथा भारत सरकार के अधिनियम 1935 से आपात प्रावधानों इत्यादि को लेकर भारत के संविधान की रचना की गई ।** दूसरे, संविधान ने भारत में संघीय राज्य की स्थापना की और इसमें राज्यों के भी कई प्रकार थे और संघ राज्य क्षेत्र हैं। इस सबके लिए सरकार का पूर्ण ढाँचा भी संविधान में दिया गया है। देश की विशालता एवं अनेक प्रकार की विभिन्नताओं ने भी संविधानको बड़ा होने में योगदान किया। देश बहुभाषीय, बहुधर्मीय, बहुसम्प्रदायीय है जिसे ध्यान में रखना था। इसके साथ ही अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के उत्थान के लिए समुचित प्रावधान भी करना था। **देश की राष्ट्रभाषा के निर्धारण और उसके विकास के लिए भी प्रावधान करना था।** भौगोलिक दृष्टि से देश की विविधता एंव विशालता के कारण सब भागों के समुचित विकास के लिए समुचित प्रावधान करना आवश्यक था। राष्ट्रीय आंदोलन में नागरिकों के अधिकारों की मांग सतत बनी रही थी। अतएव देश क स्वतंत्र होने पर उन्हें मूल अधिकारों के रूप में विशद रूप में संविधान में समाविष्ट किया गया है। राज्य के एक कल्याणकारी राज्य के रूप में संकल्पना की गई। अतएव उसके अनुरूप राज्य के नीति निदेशक तत्त्व संविधान में रखे गए हैं। राज्य और केन्द्र दोनों स्तर पर स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है। लोक सेवाओं के लिए व्यक्तियों का चयन निष्पक्षता और योग्यता के आधार पर हो, इसके लिए केन्द्र और राज्य दोंनों में स्वायत्तता–युक्त लोक सेवा आयोगों की व्यवस्था की गई है। उसी प्रकार देश में चुनाव निष्पक्ष हो इसके लिए निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार अनेक संस्थाएं निर्मित की गई और उनके संगठन और कार्यपद्धति के बारे में विशदता से व्यवस्था की गई। इतने सारे विस्तृत उपबंधों के होने के बारे में संविधान निर्माताओं का यह मत था कि लोकतांत्रिक प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए और देश के सामाजिक, आर्थिक उत्थान के लिए पर्याप्त प्रावधानों की आवश्यकता थी।

देश का इतना बड़ा संविधान होने के लाभ और हानियां दोनों हैं। लाभ यह है कि इसमें देश के राजनीतिक ढाँचे के बारे में सांगोपांग प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही उन राजनीतिक, समाजिक और आर्थिक लक्ष्यों और आदर्शों को भी समाविष्ट किया गया है जिनके लिए राष्ट्रीय आंदोलन हुआ था। संविधान निर्माताओं ने संविधान में उन सारी बातों एवं समस्याओं, जो उठ सकती थी, के बारे में विस्तृत प्रावधान किया है।

संविधान के इतने बड़े होने की हानि यह है कि उसके प्रावधानों के अर्थान्वयन (interpretation) के बारे में समय–समय पर मतभेद होते रहे। इसके अर्थान्वयन को लेकर उच्चतम न्यायालय ने बड़ी संख्या में निर्णय दिए हैं। **इसलिए भारतीय संविधान को वकीलों का स्वर्ग कहा जाता है।** संविधान में बार–बार संशोधनों का एक कारण इसकी विशालता भी है।

भारत का संविधान अभी केवल लगभग पचपन वर्ष पुराना है, तथापि इसमें अब तक 92 संशोधन पारित हो चुके हैं और प्रस्तावित संशोधनों की संख्या 100 से अधिक है। किन्तु अमेरिका का संविधान एक सौ पचास वर्ष पुराना है उसमें केवल 27 संशोधन हुए हैं।

(3) **मूल अधिकार**–संविधान का भाग 3 अनुच्छेद 12 से 35 तक नागरिकों एवं व्यक्तियों के मूल अधिकारों को अधिकथित करता है। ये उन आदर्शों को व्यक्त करते हैं जो राष्ट्रीय आंदोलन के आधारभूत लक्ष्यों में से एक था। मूल अधिकार संविधान के महत्त्वपूर्ण अंग हैं और संविधान के मर्म को समझने के लिए उनका कुछ विस्तृत विवेचन आवश्यक है। अतएव अगले अध्याय में उन पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

(4) **राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व**–संविधान का भाग 4 अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों को अधिकथित करता है। राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में सामाजिक, आर्थिक उत्थान एवं कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है। पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि स्वतंत्रता आंदोलन में राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ आर्थिक और सामाजिक न्याय प्राप्त करना भी लक्ष्य रखा गया था। इसलिए इसे संविधान में प्रमुख स्थान दिया जाना अपेक्षित था। राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में सामाजिक, आर्थिक न्याय सुनिश्चित कराने के लिए उपबंधों के साथ ही राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाने के उपबंध भी हैं।

नीति निदेशक तत्त्वों को न्यायालय के माध्यम से लागू नहीं कराया जा सकता लेकिन देश का शासन चलाने में उनके आधारभूत महत्त्व को माना गया है और राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विधियां बनाएं।

(5) **मूल कर्तव्य**–संविधान के निर्माण के समय उसमें मूल कर्तव्यों का प्रावधान नहीं था। तथापि बाद में यह अनुभव किया गया कि नागरिकों के लिए मूल कर्तव्यों का प्रावधान आवश्यक है। इसलिए **संविधान के 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा एक नया भाग अर्थात चार–क में, अनुच्छेद 51क को संविधान में समाविष्ट किया गया जिसमें नागरिकों के मूल कर्तव्य विहित हैं। तदुपरान्त संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा एक और कर्तव्य अर्थात् ग्यारहवां कर्तव्य जोड़ा गया है। मूल कर्तव्य ही इस पुस्तक का विवेच्य विषय है। इसके बारे में विस्तार से अगले अध्यायों में लिखा गया है।**

(6) **संसदीय प्रणाली की सरकार**–लोकतांत्रिक प्रणाली में सरकार दो प्रकार की हो सकती है : अध्यक्षात्मक एवं संसदीय। अध्यक्षात्मक सरकार वह होती है जहाँ कार्यकारिणी का प्रमुख अध्यक्ष होता है। वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रणाली से निर्वाचित होता है और वह सरकार का शीर्षस्थ व्यक्ति होता है जैसा अमेरिका में है। इसके विपरित संसदीय प्रणाली वह प्रणाली है जहाँ कार्यकारिणी जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से गठित होती है और वे जनता के चुने गए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारत में इसी प्रकार की सरकार है। इसमें केन्द्र तथा राज्यों दोनों जगह जनता के चुने गए प्रतिनिधियों के बहुमत के समर्थन के आधार पर कार्यकारिणी गठित होती है जिसे मंत्रिमंडल कहा जाता है। वह जनता के चुने गए प्रतिनिधियों यथास्थिति लोक सभा अथवा विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। जनता के चुने गए प्रतिनिधियों के बहुमत का विश्वास खो देने पर वह समाप्त हो जाती है। इस प्रणाली में सरकार अथवा मंत्रिमंडल परोक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। कार्यकारिणी को विद्यमान रहने के लिए विधानमंडल का समर्थन चाहिए और विधान मंडल के सदस्यों को अगले निर्वाचन में अपने क्षेत्र के मतदाताओं के बहुमत का समर्थन चाहिए। इसलिए जनता का समर्थन पाने के लिए उन्हें उनके हित के कार्यों को करना पड़ता है।

(7) **संघात्मक प्रणाली**–सरकार का ढाँचा दो प्रकार का हो सकता है एकात्मक अथवा संघात्मक। एकात्मक सरकार वह है जहाँ देश की केवल एक ही अथवा केंद्रीय सरकार होती है, जैसा ब्रिटेन में है। संघात्मक सरकार वह होती है जहाँ राज्य और केंद्रीय दो स्तरों की सरकारें होती है। केंद्रीय सरकार राज्यों के एक संघ के रूप में होती है जैसा अमेरिका और भारत में है। भारत में केंद्र अथवा संघ, राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से मिलकर बना हुआ है। विधायी विभाग राज्यों और केंद्र के बीच संविधान द्वारा विभाजित किए गए हैं। उनकी प्रशासनिक शक्ति भी उन विषयों पर है। केंद्र और राज्य अपने–अपने विषयों पर विधि बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। कुछ स्थितियों में केंद्र को राज्य के विषयों पर विधि बनाने की शक्ति है। कतिपय स्थितियों में केंद्र द्वारा बनाई गई विधि राज्य द्वारा बनाई गई विधि पर अध्यारोही होती है। आपात् स्थिति लागू होने पर राज्य की विधि बनाने की शक्ति केन्द्र में निहित हो जाती है।

(8) **संघ की प्रधानता**–भारत यद्यपि संघ राज्य है तथापि देश की एकता के हित में संघ सरकार की प्रधानता है। इसलिए उसे कभी–कभी केंद्रोन्मुख संघ राज्य भी कहा जाता है। विधान निर्माण के संबंध में केंद्र की प्रधानता है। विधायी विषयों को तीन भागों में बाटां गया है : संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। समवर्ती सूची के विषयों पर केंद्र और राज्य दोनों विधियां बना सकते हैं, किंतु केंद्र द्वारा बनाया गया विधान राज्य विधान पर अध्यारोही होता है। उपर्युक्त सूचियों के अतिरिक्त अवशिष्टीय विषयों पर केवल केंद्र सरकार को विधान बनाने की शक्ति है। कतिपय स्थितियों में केंद्र, राज्य सरकार के विषयों पर भी विधान बना सकता है। आपात्काल घोषित होने पर, जिसे घोषित करने की शक्ति केंद्र के पास ही होती है, सरकार का स्वरूप संघात्मक न रहकर एकात्मक हो जाता है। किसी राज्य में आपात् स्थिति लागू होने पर राज्य की विधायी और कार्यपालक शक्ति केंद्र सरकार में निहित हो जाती है। यह प्रावधान विश्व के अनेक संघ राज्यों में अनुभवों के आधार पर किया गया है। यह प्रावधान देश की एकता और अखंडता के हित में भी है।

(9) **वयस्क मताधिकार**–ऊपर यह कहा गया है कि भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में देश का शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में है। अतएव यह आवश्यक है कि देश की समस्त जनता इसमें भाग ले। इसमें भाग लेने के लिए योग्यता अर्थात् 18 वर्ष की आयु अर्थात वयस्क होना है। यह 18 वर्ष की आयु ऐसी मानी गई है जब व्यक्ति विवेक सम्पन्न अथवा क्या करने योग्य है और क्या करने योग्य नहीं है, इसका निर्णय करने में सक्षम हो जाता है। इसलिए यह आयु प्राप्त किए हुए प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार अथवा वोट देने का अधिकार है। इसे वयस्क मताधिकार कहा जाता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि मताधिकार का प्रयोग करने के लिए कतिपय स्तर की शैक्षिक योग्यता भी आवश्यक होनी चाहिए और भारत में अभी भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग निरक्षर है, अतएव वयस्क मताधिकार का प्रावधान नहीं होना चाहिए। यद्यपि भारतीय लोकतंत्र के कार्यकरण में इससे कुछ त्रुटियां दर्शित होती हैं तथापि अब तक जो निर्वाचन हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि मताधिकार के मामले में जनता में परिपक्वता आ गई है। मताधिकार की योग्यता के बारे में एक ही मानदंड होने से भी जनता में एकता की भावना उत्पन्न होती है।

(10) **एकल नागरिकता**–कुछ संघात्मक संविधानों में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में। वहाँ व्यक्ति उस राज्य का जिसमें वह निवास करता है, नागरिक होने के साथ ही संघ अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका का भी नागरिक होता है। नागरिकता की इन दोनों हैसियतों में उसके भिन्न–भिन्न अधिकार और कर्तव्य होते हैं। भारतीय संविधान संघात्मक होते हुए भी एकल नागरिकता का प्रावधान करता है अर्थात् केवल भारतीय संघ की नागरिकता। इस प्रकार भारत के प्रत्येक नागरिक के समान अधिकार और कर्तव्य होते हैं। यह प्रावधान सभी नागरिकों में एकत्व और समानता की भावना प्रदान करता है। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए हितकर है।

(11) **स्वतंत्र न्यायपालिका**–किसी राज्य में सरकार के तीन अंग होते हैं : विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। विधयिका का मुख्य कार्य विधान निर्माण होता है। कार्यपालिका का मुख्य कार्य विधान को लागू करना एवं प्रशासन होता है। न्यायपालिका का कार्य नागरिकों के बीच अथवा नागरिक एवं राज्य के बीच विवादों का निपटारा करना होता है। संघात्मक संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता एक अनिवार्य अपेक्षा है जिससे संघ और राज्यों के बीच किसी विवाद पर स्वतंत्र निर्णय प्राप्त किया जा सके। दूसरे,

भारत का एक वृहद लिखित संविधान है जिसका अर्थान्वयन या निर्वचन करने के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका अपेक्षित है जिसका निर्णय अंतिम हो। तीसरे, भारत के नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान किए गए है। जिसका संरक्षण न्यायपालिका को सौंपा गया है। इस प्रकार भारत की शासन प्रणाली में न्यायपालिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उच्चतर न्यायपालिका दो स्तरों की है। राज्यों में उच्च न्यायालय हैं और केंद्र में उच्चतम न्यायालय है। भारत में न्याय प्रशासन की एक ही व्यवस्था है। न्याय प्रणाली के शिखर पर उच्चतम न्यायालय है जिसका निर्णय देश के सभी न्यायालयों एवं अधिकरणों पर बाध्यकारी है। न्यायपालिका को स्वतंत्र रखने की व्यवस्था संविधान के अनेक उपबंधों द्वारा की गई है। इस संबंध में मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं।

(1) न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण

(2) न्यायाधीशों की पदावधि की सुरक्षा

(3) न्यायाधीशों के वेतन भत्ते आदि का विधायिका द्वारा मतदान से परे होना।

(4) संसद् विधि द्वारा उच्चतम न्यायलय की अधिकारिता को बढ़ा सकती है, किंतु उसे घटा नहीं सकती।

(5) न्यायाधीशों द्वारा अपने न्यायिक कर्तव्य के पालन संबंधी आचरण पर संसद् में या राज्य विधान मंडल में चर्चा नहीं हो सकती है।

(6) न्यायालय को अपने अपमान के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

न्यायपालिका ने भारत से लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

(12) **संविधान संशोधन, नम्यता और अनम्यता का मिश्रण**–संघात्मक संविधान में उसके संशोधन की प्रक्रिया दुरूह होती है क्योंकि संशोधन के लिए राज्य और केंद्र दोनों में कपितय स्वरूप की सहमति होनी चाहिए। ऐसे संविधान को अनमनीय या अनम्य संविधान कहते हैं जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में है। जहाँ संविधान का संशोधन साधारण प्रक्रिया से हो जाता है उस संविधान को नमनीय अथवा नम्य संविधान कहते हैं। जैसे ब्रिटेन में है। यद्यपि वहाँ कोई लिखित संविधान नहीं है, केवल कुछ अधिनियम हैं जो संविधान गठित करते हैं। उनका संशोधन साधारण संसदीय प्रक्रिया से हो जाता है। भारत का संविधान नम्यता एवं अनम्यता का एक मिश्रण प्रस्तुत करता है। संविधान को कतिपय प्रावधानों का संसद् द्वारा साधारण विधायी प्रक्रिया द्वारा ही संशोधन हो सकता है किन्तु कतिपय उपबंधों का एक विशेष प्रक्रिया द्वारा ही संशोधन किया जा सकता है। ऐसे कुछ उपबंधो का संशोधन संसद् के प्रत्येक सदन में उस सदन की कुछ सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित करके ही किया जा सकता है। कतिपय उपबंध के संशोधन के लिए यह आवश्यक है कि संशोधन के लिए उपबंध करने वाले विधेयक को कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा पारित इस आशय के संकल्पों द्वारा उन विधानमंडलों का अनुसमर्थन प्राप्त किया जाए।

(13) **आपात् स्थिति (emergency) का प्रावधान**–संविधान आपात् स्थिति के लिए भी उपबंध करता है। ऐसी आपात् स्थिति बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह या किसी राज्य में सांविधानिक तंत्र के विफल हो जाने पर हो सकती है। ऐसी स्थिति की उद्घोषणा (declaration) राष्ट्रपति द्वारा की जानी है। ऐसी स्थिति में केंद्र की शक्ति का विस्तार आवश्यकतानुसार राज्य के सीमा क्षेत्र में आने वाली कार्यपालक शक्ति एवं विधायी शक्ति पर हो जाता है। बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण आपात् की स्थिति में अनुच्छेद 19 के अधीन मूल अधिकार का निलम्बन (suspension) हो जाता है। एक तीसरी आपात् स्थिति, अर्थात् वित्तीय आपात स्थिति में केंद्र की कार्यपालक शक्ति का विस्तार राज्य को वित्तीय औचित्य सम्बन्धी निदेशों और अन्य निदेश देने तक हो जाएगा।

इस प्रकार आपात् स्थिति में सरकार का स्वरूप संघात्मक न रहकर एकात्मक हो जाता है।

(14) **न्यायिक सर्वोच्चता (judicial supremacy)**–संविधान के उपबंधों के अनुसार सरकार के तीनों अगों विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच न्यायपालिका का स्थान सर्वोच्च है। उच्चतम न्यायालय, विधायिका द्वारा पारित अधिनियमों एवं कार्यपालिका के आदेशों को उनके मूल अधिकारों के

उल्लंघन में या संविधान के अन्य प्रावधानों के अनुसार न होने या विधायी शक्ति बाह्य होने की दशा में निराकृत कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने अपनी न्यायिक सक्रियता से अधिनियमों एवं कार्यपालिका के आदेशों के न्यायिक पुनरीक्षण का एक नया आधार खोज निकाला है। संविधान के निर्माण के समय उसमें सम्यक् प्रक्रिया खंड नहीं था अर्थात किसी अधिनियम अथवा कार्यपालक आदेश में सम्यक् प्रक्रिया होने की जाँच न्यायालय द्वारा नहीं की जानी थी। तथापि उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में कहा कि अधिनियमों या आदेशों की वैधता सम्यक् प्रक्रिया के आधार पर की जा सकती है। उसके पश्चात् से यह संविधान का एक नियम बन गया है। न्यायालय ने संविधान के संशोधनों की वैधता को जाँचने का अधिकार भी ग्रहण कर लिया है। अपने अर्थान्वय द्वारा उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट मूल अधिकार अर्थात प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण के अधिकार का अतिशय विस्तार किया है। हाल के वर्षों में उच्चतम न्यायालय ने एक लोकहितवाद (public interest) की अधिकारिता (empowerment) ग्रहण किया है जिसके अधीन वह सरकार को उसके संवैधानिक अथवा कानूनी दायित्वों के पालन का आदेश दे सकता है और पालन किए जाने की निगरानी भी कर सकता है। उच्चतम न्यायालय के संविधान के ऐसे विस्तृत अर्थान्वय की दृष्टि से यह भी कहा जाता है कि उच्चतम न्यायालय ने संविधान को पुनः लिखा है। **इस प्रकार देश के संवैधानिक तंत्र में उच्चतम न्यायालय को सर्वोच्चता प्राप्त है।**

अध्याय – 3

मूल अधिकार

यद्यपि इस पुस्तक का मुख्य विवेच्य विषय मूल कर्तव्य है तथापि उनकी आवश्यकता और क्षेत्र विस्तार को समझने के लिए मूल अधिकारों से संक्षिप्त परिचय आवश्यक है। आधुनिक विधिशास्त्र में अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के सह–संबंधी माने जाते हैं। अधिकारों का अस्तित्व कर्तव्यों के बिना नहीं हो सकता है। भारतीय संविधान विस्तृत मूल अधिकारों का प्रावधान करता है। नागरिकों के विस्तृत मूल अधिकारों का प्रवधान करता है। नागरिकों के विस्तृत मूल अधिकारों की दृष्टि से समाज के प्रति उनके कर्तव्यों की आवश्यकता होने के साथ राष्ट्र की एकता और अखंडता को संरक्षित करने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए मूल कर्तव्यों का प्रावधान किया गया तथा **न्यायालय अब मूल अधिकारों की व्याख्या एवं अर्थान्वयन (interpretation) और उनका सीमा क्षेत्र निर्धारित करने में मूल कर्तव्यों का भी सहारा लेने लगे हैं** जैसा कि पुस्तक में आगे वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से मूल अधिकारों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है। अवएव इस अध्याय में उसे किया जा रहा है।

संविधान में विस्तृत मूल अधिकारों के होने का कारण नागरिक स्वतंत्रता के प्रति नए युग की अनिवार्य मांग थी। देश राष्ट्रीय आंदोलन के काल से पाश्चात्य देशों के संविधानों से प्रभावित था जिनमें नागरिकों के अधिकारों का पर्याप्त प्रावधान है। यह बात वहाँ ऐतिहासिक कारणों से थी। मध्य काल में यूरोप में निरंकुश राजतंत्रों का अस्तित्व रहा और नागरिकों के अधिकार शून्य से थे। नागरिक का जीवन और संपत्ति राजा की इच्छा पर निर्भर करती थी। इसके विरुद्ध वहाँ जन आंदोलन और क्रांतियां हुई। ब्रिटेन में सर्वप्रथम मैगनाकार्टा में नागरिकों को कुछ अधिकार दिए गए। तत्पश्चात् क्रमशः उन अधिकारों का विस्तार हुआ। **अमेरिका अपनी स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटेन का उपनिवेश था। वहाँ भी क्रांति हुई और ब्रिटेन के आधिपत्य से उसकी मुक्ति हुई।** तत्पश्चात् वहाँ नया संविधान निर्मित किया गया जिसमें बाद में नागरिकों के अधिकारों का **विल आफ राइट्स के नाम से समावेश हुआ।** उसके पश्चात् फ्रांस में क्रांति हुई और राजतंत्र समाप्त हो गया। वहाँ नए संविधान का निर्माण किया गया जिसमें नागरिकों के अधिकारों को प्रमुख स्थान मिला।

भारत में अंग्रेजों के शाासन काल में अंग्रेजी भाषा का प्रचार–प्रसार हुआ और शिक्षित लोग पाश्चात्य देशों की शासन प्रणालियों से परिचित हुए। अंग्रेजी शासन में देश दासता की स्थिति में था। देशवासियों के कोई अधिकार नहीं थे। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध कोई सुनवाई नहीं थी। पाश्चात्य देशों में नागरिकों के अधिकारों के प्रावधान ने उन्हें आकर्षित किया और नागरिकों के अधिकारों की मांग राष्ट्रीय आंदोलन का एक भाग बन गई। लोगों को कुछ मूल अधिकार दिया जाना भी राष्ट्रीय आंदोलन का एक उद्देश्य था। भारत के स्वराज विधेयक 1895 में वाक् की स्वतंत्रता, एकान्तता और समता का अधिकार, मताधिकार का अधिकार तथा केवल विनिर्दिष्ट अपराधों के लिए दण्ड देने की बात कही गई थी।

भारत का संविधान विधेयक 1895 में नागरिकों के अधिकारों के बारे में प्रावधान थे। अन्य अधिकारों के साथ इसमें वाक् की स्वतंत्रता, विधि के समक्ष समता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राज्य से निःशुल्क शिक्षा इत्यादि थे।

आगे नागरिकों के अधिकारों के क्षेत्र का क्रमशः विस्तार हुआ। वे केवल राजनीतिक अधिकारों तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि उनमें अन्य सिविल अधिकार भी सम्मिलित हुए। अभी उन्हें मूल अधिकार नहीं कहा गया था। **कांग्रेस के आत्मनिर्णय के संकल्प (दिसम्बर 1918) में भारत में आत्म–निर्णय के सिद्धांत के व्यावहारिक प्रयोग के पहले कदम के रूप में स्वतंत्र वाक् और मनमानी गिरफ्तारी से स्वतंत्रता इत्यादि थे।**

इसमें कहा गया था : "भारत में सिद्धांत के व्यावहारिक प्रयोग का पहला कदम होना चाहिए"

(क) स्वतंत्र चर्चा पर से सारी बाधाएं हटाया जाना और इसलिए राजनीतिक प्रश्नों की चाहे वे प्राइवेट में हों अथवा जनसभा अथवा अन्यथा हों, स्वतंत्र चर्चा पर निबंधन लगाने वाली सारी विधियों, विनियमों और

अध्यादेशों का तुरंत निरसन हो जिससे कि भारत में बसने वाले सभी लोगों की वैध आकांक्षाएं और राय निडर होकर व्यक्त की जा सकें, आगे, इन विधियों, विनियमों और अध्यादेशों (ordinances) का उन्मूलन हो जो कार्यपालिका को भारत में किसी ब्रिटिश प्रजा को साधारण सिविल और दांडिक विधि की प्रक्रिया से बाहर गिरफ्तार करने, निरुद्ध करने, स्थानबद्ध करने, स्थान बाहर करने अथवा बंदी बनाने की शक्ति देते हैं और राजद्रोह की विधि को इंग्लैण्ड के राजद्रोह की विधि के अनुरूप किया जाए।[1]

भारत के कामनवेल्थ विधेयक 1925 को, जिसका मसविदा बनाया जाना और जिस पर हस्ताक्षर विख्यात भारतीय राजनीतिक नेताओं द्वारा किए गए थे इग्लैण्ड की लेबर पार्टी को पार्लियामेंट में पेश करने के लिए भेज गया था, जिसमें नागरिकों के अधिकार समाविष्ट थे। इस दस्तावेज में प्रथम बार नागरिकों के अधिकारों को मूल अधिकारों का नाम दिया गया था। इसमें शारीरिक स्वतंत्रता, अन्तःकरण की स्वतंत्रता, वाक् और सार्वजनिक स्थानों पर सम्मेलन इत्यादि की स्वतंत्रता, निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा, सड़कों के प्रयोग करने का अधिकार, विधि के समक्ष समता और लिंग के आधार पर कोई विभेद न किए जाने का प्रावधान किया गया था।

नेहरू समिति रिपोर्ट 1928 में जिस संविधान की सिफारिश की गई, थी उसमें मूल अधिकारों का एक पूरा अध्याय था। इसमें इस अध्याय में पूर्ववर्ती दस्तावेजों की भाँति अनेक अधिकारों जैसे शारीरिक स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, वाक् और सम्मेलन की स्वतंत्रता, निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा, विधि के समक्ष समता इत्यादि उल्लिखित किया गया था तथापि इसमें मूल अधिकारों में जन कल्याणकारी प्रावधानों को भी सम्मिलित करके एक उल्लेखनीय प्रयास किया गया था। इसमें संसद् पर दायित्व डाला गया था कि वह सभी नागरिकों के स्वास्थ्य के रख–रखाव और कार्य के लिए दुरुस्ती, प्रत्येक कर्मकार के लिए एक निर्वाह मजदूरी को प्राप्त कराना, प्रसूति का संरक्षण, बालकों का कल्याण और वृद्धावस्था, अशक्तता और बेकारी के आर्थिक प्रभावों के निवारण के लिए विधि बनाए।

आगे राष्ट्रीय नेताओं ने मूल अधिकारों के लिए अपने संघर्ष को जारी रखा। मूल अधिकारों के अंतर्विषय के क्षेत्र के भीतर जनता का आर्थिक उद्धार भी सम्मिलित हो गया। **कराची कांग्रेस का संकल्प 1931 इस दृष्टि से एक बहुत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह मूल अधिकारों को आर्थिक कार्यक्रम से जोड़ते हुए रखता है।**

इसलिए इसने अपने संकल्प में इसे मूल अधिकार और आर्थिक कार्यक्रम शीर्षक दिया। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के साथ राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्विष्ट होने की पृष्ठभूमि में इसका बहुत महत्त्व है।

ये संकल्प कांग्रेस के बाद के संकल्पों में जोर देकर दोहराए गए।

भारत सरकार अधिनियम –1935 (Goverment of India Act- 1935) के पारित होने से पूर्व हुई गोल मेज सभा में भाग लेने वाले नेताओं ने जोर दिया कि प्रस्तावित भारत संविधान अधिनियम में एक अधिकारों का बिल सम्मिलित किया जाए।

तथापि भारत सरकार अधिनियम 1935 में मूल अधिकारों को स्थान नहीं मिला। इसलिए मूल अधिकारों की मांग जारी रही। **सन् 1935 का अधिनियम प्रायः सारे राजनीतिक दलों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।** भारत के लिए एक संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा संयोजित करने की मांग उठी और इस मांग पर जोर दिया गया कि मूल अधिकारों को संविधान का भाग होना चाहिए।

सप्रू समिति के संविधान सम्बन्धी प्रस्तावों में भारत के संविधान में मूल अधिकारों को सम्मिलित करने के समर्थन में बड़े जोरदार तर्क थे।[1]

अन्ततः एक राष्ट्रीय सरकार को सत्ता सौंपी गई और संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा बनी। अब सामाजिक–आर्थिक न्याय की प्राप्ति राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बना। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के संकल्प में (दिल्ली, नवम्बर 1947) जिसमें उद्देश्य और आर्थिक कार्यक्रम उल्लिखित थे, यह कहा गया था।

"राजनीतिक स्वतंत्रता के प्राप्त किए जाने के पश्चात् कांग्रेस को अब नए कार्य की ओर ध्यान देना चाहिए, अर्थात देश में वास्तविक लोकतंत्र और सामाजिक न्याय और समता पर आधारित एक समाज की

स्थापना। ऐसे समाज के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को अवसर की समता और अपने व्यक्तित्व के अबाधित विकास के लिए कार्य करने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। इसे केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है कि जब लोकतंत्र का विस्तार राजनीतिक से सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों पर हो।

नागरिकों को मूल अधिकारों और सामाजिक–आर्थिक न्याय को प्राप्त कराने के उद्देश्य को संविधान सभा, जिसने संविधान का निर्माण किया, द्वारा 22 जनवरी, 1947 को अंगीकार किया गया। इसे उद्देश्यों के संकल्प में अभिव्यक्ति मिली। मूल अधिकारों के बारे में उद्देश्य में अंतर्विष्ट संकल्प को संविधान की उद्देशिका में अंतर्विष्ट किया गया है जिसे पिछले अध्याय में उद्धृत किया गया है। इसे संविधान के भाग 3 में 'मूल अधिकार' शीर्षक के अधीन विस्तृत रूप में अधिनियमित किया गया है।

मूल अधिकार उन बुनियादी आदर्शों को व्यक्त करते हैं जिन्हें देश की जनता राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंम्भ से ही संजोए हुई थी और जिनका उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा की रक्षा तथा ऐसी परिस्थितियां उपलब्ध कराना है जिनमें हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके। ये बुनियादी आदर्श मानव अधिकारों को सुनिश्चित करते हैं और इनसे राज्य पर अंकुश लगता है कि वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विविध पक्षों पर रोक–टोक न लगाए। इन्हें मूलभूत अधिकार इसीलिए माना जाता है क्योंकि व्यक्ति के संपूर्ण बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए इनका होना सबसे आवश्यक है। संविधान में शामिल करने से इन अधिकारों को ऐसी गरिमा मिल गई है कि सामान्य परिस्थितियों में विधानमंडल इनका अतिक्रमण नहीं कर सकते। इसके साथ ही संविधान में इन्हें शामिल करने का उद्देश्य ऐसी सरकार बनाना है जो कुछ व्यक्तियों की मर्जी से नहीं, बल्कि कानून के अनुसार चलाई जाए।

संविधान में बताई गई स्थितियों को छोड़कर, मूल अधिकारों पर रोक नही लगाई जा सकती।

मूल अधिकारों को सात शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है–

1. समता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
5. सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार
6. कुछ कानूनों के संरक्षण की व्यवस्था
7. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

1. समता का अधिकार

यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक में अन्तर्विष्ट है। अनुच्छेद 14 कहता है कि राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नही करेगा। इस अधिकार में उद्देशिका में घोषित समता का विचार निहित है। यह मूल अधिकारों मे सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस अधिकार के अंतर्गत सभी लोगों को कानून के आगे समता अथवा एक जैसा कानूनी संरक्षण देने की व्यवस्था है। यह समता लोकतांत्रिक प्रणाली के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है। यह अधिकार 'कानून के शासन'(रूल ऑफ लॉ) का आधार है। इसका **तात्पर्य है कि कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। और हर व्यक्ति पर, चाहे उसका पद या हैसियत कुछ भी हो, न्यायालयों के आदेश समान रूप से लागू होते हैं।**

अनुच्छेद 15 से 18 तक के प्रावधानों मे समता के इस अधिकार को और स्पष्ट किया गया है। अनुच्छेद 15 में यह प्रावधान है कि राज्य किसी नागरिक के साथ केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग या स्थान अथवा इनमें से किसी भी एक आधार पर भेदभाव न करे। यह प्रावधान भी है कि कोई नागरिक दुकानों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों और अन्य सार्वजनिक स्थलों में जाने और कुंओ, तालाबों तथा सड़कों के इस्तेमाल के मामले में ऐसा कोई भेदभाव न करे। राज्य को महिलाओं और बच्चों के संरक्षण तथा सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े नागरिकों के वर्गों अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की प्रगति के लिए विशेष प्रावधान बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद 16 के अनुसार प्रत्येक

नागरिक को रोजगार पाने अथवा किसी भी सरकारी पद पर नियुक्ति के मामले में धर्म, वंश, जाति, लिंग, पैतृक स्थिति, जन्म–स्थान या निवास–स्थान के भेदभाव के बिना, अवसर की समता की गारंटी दी गई है। इसके दो अपवाद हैं।–

(i) संसद् कानून बना कर सरकारी नौकरी के लिए संबंधित राज्य या केन्द्रशासित राज्य में ऐसी नौकरी पाने के पूर्व निवास की शर्त निर्धारित कर सकती है।

(ii) सरकार को यह अधिकार है कि अगर उसकी राय में सरकारी सेवाओं में नगारिकों के किसी पिछड़े वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है तो वह ऐसा प्रावधान करके सेवाओं में ऐसे वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षण कर सकती है।

इस प्रावधान के आधार पर ही विभिन्न सेवाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

समता लाने के उ द्देश्य से, अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता (छुआछूत) समाप्त कर दी गई हैं और ऐसा करना कानून द्वारा दंडनीय बना दिया गया है। इस प्रावधान के आधार पर ही संसद् ने सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 पारित किया है, जिसके अंतर्गत छुआछूत बरतने पर दंड दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 18 में राज्य पर किसी भी व्यक्ति को उपाधियां देने पर भी रोक लगाई गई हैं। लेकिन सैनिक तथा शैक्षिक उपाधियों को इस निषेध से मुक्त रखा गया है। **संविधान में किसी भारतीय नागरिक पर किसी अन्य देश की सरकार से उपाधि प्राप्त करने की भी मनाही है।** यह भी व्यवस्था है कि सरकार के अधीन किसी लाभ या विश्वास के पद पर कार्यरत कोई विदेशी नागरिक, राष्ट्रपति की सहमति के बिना किसी अन्य देश की सरकार से कोई उपाधि, उपहार, वेतन या पद नहीं प्राप्त कर सकता।

2. स्वतंत्रता का अधिकार

यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में समाविष्ट है। अनुच्छेद 19 के आधीन छह स्वतंत्रताएं भारत के नागरिकों को दी गई हैं जो लोकतांत्रिक समाज का आधार हैं और व्यक्ति के विकास के लिए अनिवार्य हैं।

ये स्वतंत्रताएं हैं :–

(क) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता :– यह सभी लोकतांत्रिक प्रणालियों की आधारभूत स्वतंत्रता है। इसमें प्रेस की स्वतंत्रता और प्रदर्शन करने या धरना देने की स्वतंत्रता भी शामिल हैं।

(ख) सम्मेलन की स्वतंत्रता :– इसका तात्पर्य है कि नागरिकों को हथियारों के बिना शांतिपूर्ण तरीके से एकत्र होने का अधिकार है इसमें बैठक, सभा या सम्मेलन करने तथा जुलूस निकालने की स्वतंत्रता शामिल है।

(ग) संगठन अथवा संघ बनाने की स्वतंत्रता :– लोकतांत्रिक प्रणाली में यह एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है। इसमें कंपनियां, समितियां, साझेदारी, श्रमिक संघ और राजनीतिक दल गठित करने के अधिकार शामिल हैं। संघ बनाने की स्वतंत्रता में इनका कामकाज जारी रखने की स्वतंत्रता भी शामिल है।

(घ) देश में कहीं भी आने जाने का अधिकार :– इसके अंतर्गत भारत के हर हिस्से में आने–जाने का अधिकार है। इस अधिकार में इस बात पर बल दिया गया है कि जहाँ तक नागरिकों का प्रश्न है, उनके लिए पूरा भारत एक इकाई है। इस अधिकार का उद्देश्य नागरिकों की राष्ट्रीय भावना तथा देश की एकता और अखंडता को बढावा देना है।

(ङ) निवास का अधिकार :– इसके अंतर्गत हर नागरिक को भारत के किसी भी हिस्से में रहने और बसने का अधिकार हैं। इसका उद्देश्य भारत में या उसके किसी हिस्से में लोगों के बीच किसी किस्म के भेदभाव को हटाना है।

(च) पेशा, धंधा या व्यापार करने की स्वतंत्रता :– इसका तात्पर्य है कि हर नागरिक अपनी पसंद का कोई भी पेशा कर सकता है।

लेकिन ये सभी अधिकार निर्बाध नहीं हैं। सरकार को देश की सुरक्षा, अन्य देशों से मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता अथवा नैतिकता, अनुसूचित जनजातियों के हित, न्यायालय की अवमानना, मानहानि, अपराध के लिए भड़काने और भारत की प्रभुता और अखंडता जैसे किसी भी एक या एक से अधिक आधार पर, समाज के व्यापक हित में इन स्वतंत्रताओं पर कानून के जरिए प्रतिबंध लगाने के अधिकार हैं।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए कुछ विशेष व्यवस्थाएं की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 20 में यह व्यवस्था है कि किसी भी काम को उसके किए जाने से पहले की तिथि से अपराध नहीं माना जा सकता। इसका तात्पर्य है कि अगर कोई काम, किए जाने की तिथि को अपराध नहीं था तो इसे बाद की किसी तिथि को अपराध नहीं घोषित किया जा सकता। **किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए दो बार मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, न ही उसे एक ही अपराध के लिए दो बार सजा दी जा सकती।** कोई व्यक्ति स्वयं को अपराधी साबित करने को विवश नहीं किया जा सकता। इसका मतलब है किसी व्यक्ति को अपने ही खिलाफ अपराध किए होने की गवाही देने को बाध्य नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21 के अधीन एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण मूल अधिकार यह है कि किसी भी व्यक्ति को, कानूनी प्रक्रिया के अलावा, प्राण या शारीरिक स्वतंत्रता से वंचित नही किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय के आदेशों के अनुसार ऐसा कानून तर्कपूर्ण और उचित भी होना चाहिए। इससे इस प्रावधान का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। आजीविका का अधिकार, बंधुआ मजदूरों की मुक्ति और पुनर्वास का अधिकार, तेजी से मुकदमों को निपटाए जाने, कानूनी सहायता, जेल में कैदियों के प्रति अच्छे व्यवहार जैसे अधिकारों को भी इस प्रावधान में न्यायालयों द्वारा अन्तर्विष्ट माना गया है।

अनुच्छेद 22 में गिरफ्तारी और निरोध के विरुद्ध कतिपय संरक्षण हैं। निवारक नजरबंदी (preventive detention) के तहत गिरफ्तार किए गए या हिरासत में लिए गए लोगों के लिए भी संरक्षण की व्यवस्था है। किसी व्यक्ति को अधिकार है कि (क) उसे यथासंभव जल्दी से जल्दी उसकी गिरफ्तारी की वजह बताई जाए, (ख) वह अपनी पसंद के वकील की राय ले सके और उससे अपनी पैरवी करवा सके, (ग) उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाए, (घ) इस अवधि के बाद मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना उसे हिरासत में न रखा जाए। लेकिन ये संरक्षण उस व्यक्ति को नहीं मिलेंगे जो उस समय विदेशी शत्रु हो या जिसे निवारक नजरबंदी के तहत हिरासत में लिया गया है। निवारक नजरबंदी के मामले मे दो प्रकार के संरक्षण उपलब्ध हैं : (i) किसी विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी कानून के तहत ज्यादा से ज्यादा तीन महीने तक हिरासत में रखा जाना, और (ii) सलाहकार बोर्ड की राय पर तीन महीने से ज्यादा अवधि के लिए हिरासत में रखा जा सकता है लेकिन सलाहकार बोर्ड को तीन महीने की अवधि से पहले अपनी रिपोर्ट देनी होगी और ऐसी रिपोर्ट नहीं दिए जाने की स्थिति में नजरबंदी गैरकानूनी होगी लेकिन नजरबंदी के कानून में बताई गई परिस्थितियों में सलाहकार बोर्ड की राय की शर्त छोड़ी भी जा सकती है। सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट के आधार पर भी हिरासत में रखे गए व्यक्ति को भी निवारक नजरबंदी कानून द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि के बाद हिरासत में नहीं रखा जा सकता।

नजरबंद व्यक्ति को यथासंभव जल्दी से जल्दी हिरासत में रखे जाने की वजह बताई जानी चाहिए और उसे यथासंभव जल्दी से जल्दी मौका दिया जाना चाहिए कि वह नजरबंदी के आदेश के खिलाफ आवेदन कर सके। लेकिन नजरबंद करने वाला अधिकारी नजरबंद व्यक्ति को ऐसे तथ्य बताने को बाध्य नहीं है, जिन्हें बताना वह सार्वजनिक हित में न समझे।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

ये अधिकार अनुच्छेद 23 और 24 में अन्तर्विष्ट हैं। अनुच्छेद 23 मनुष्यों के साथ दुर्व्यापार की मनाही करता है। इस अधिकार के अंतर्गत बेगार और किसी से जबरन काम कराने की मनाही है। ऐसा करना कानूनन दंडनीय है। अनुच्छेद 24 के अधीन चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों से फैक्ट्रियों, खानों आदि में काम कराने की मनाही है। इसी प्रावधान को लागू करने के लिए बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 पारित किया गया। अनेक राज्यों ने कानून बनाकर "जबरन मजदूरी" को अपराध घोषित कर रखा है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

ये अधिकार अनुच्छेद 25 से 28 के अधीन अन्तर्विष्ट है। संविधान की उद्देशिका में उल्लिखित पंथनिरपेक्षता को इसमें विस्तार से रखा गया है। इस प्रावधान के अनुसार सभी लोगों को अंतर्विवेक की स्वाधीनता है और हर एक को अपने धर्म की अभिव्यक्ति, आचरण और प्रचार का अधिकार है। लेकिन ऐसा करने में सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ तथा अन्य मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।

हर धार्मिक समुदाय या वर्ग को धार्मिक या खैराती संस्था बनाने और चलाने, धर्म के मामले में अपने तरीके से व्यवहार करने, चल–अचल संपत्ति की खरीद और बिक्री और ऐसी संपत्ति की कानून के अनुसार व्यवस्था करने का अधिकार है। किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म के प्रचार के लिए कर देने को बाध्य नहीं किया जा सकता। पूरी तरह राजकीय कोष से चलाई जा रही शैक्षिक संस्थाओं में मज़हबी शिक्षा नहीं दी जा सकती। सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त या सरकारी सहायता लेने वाली किसी शैक्षिक संस्थान में अध्ययन कर रहे किसी व्यक्ति के लिए उस संस्थान में दिए जा रहे मजहबी उपदेशों को सुनना जरूरी नहीं है, अगर उस व्यक्ति ने या उसके नाबालिग होने की स्थिति में उसके अभिभावक ने इस बारे मे अपनी सहमति न दे रखी हो।

5. सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

यह अधिकार अनुच्छेद 29, 39 में समाविष्ट है। यह अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए है। किसी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को इन्हे संरक्षित करने का अधिकार है। सरकारी या सरकारी सहायता से चलाए जाने वाले किसी शैक्षिक संस्थान में किसी भी व्यक्ति को धर्म, वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी भी आधार पर प्रवेश देने से मना नहीं किया जा सकता। सभी अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शैक्षिक संस्थाएं बनाने और चलाने का अधिकार है। सरकार अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यक समुदाय या वर्ग द्वारा चलाई जा रही शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान देने में कोई भेदभाव नही बरतेगी।

6. कुछ कानूनों के संरक्षण की व्यवस्था

संविधान के अनुच्छेद 31क और 31ख में कतिपय कानूनों को संरक्षण दिया गया है। अनुच्छेद 31ग में नीति निदेशक तत्त्वों कों कतिपय मूल अधिकारों के ऊपर माना गया है। पहले संपत्ति का अधिकार था। किन्तु अब संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार नहीं रहा। अब यह मात्र संवैधानिक अधिकार है। संविधान में देश के सामाजिक–आर्थिक उत्थान का लक्ष्य रखा गया है, इसीलिए संविधान की नौवी अनुसूची में कुछ ऐसे कानून रखे गए हैं जिन्हें मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती। ये कानून समाज के व्यापक हित में हैं। अब तक ऐसे दो सौ से अधिक अधिनियम बनाए गए हैं। ये अधिनियम, मुख्य रूप से, भूमि सुधारों से संबंधित हैं। राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों को कार्यरूप देने के लिए भी ऐसे कानून बनाए गए हैं जिन्हें कतिपय मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर अवैध नहीं घोषित किया जा सकता।

7. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

संवैधानिक उपचारों का अधिकार अनुच्छेद 32 में दिया गया है। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण अधिकार है। नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करवाने के लिए समुचित प्रक्रिया अपनाकर उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर करने का भी अधिकार है। देश के उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों की गारन्टी देने वाला और संरक्षक बनाया गया है। उच्चतम न्यायालय को समुचित निर्देश जारी कर मूल अधिकारों को लागू करने की शक्तियां दी गई हैं। उच्च न्यायालयों को भी इस तरह का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर करना, अपने आप में, एक मूल अधिकार है। उच्चतम न्यायालय ने अब अपनी अधिकारिता को और व्यापक कर दिया है। न्यायालय ने उचित मामलों में, याचिका दायर करने को प्रक्रिया की तकनीकी बातों और औपचारिकताओं में ढील देकर, लोकहित के प्रति जागरूक लोगों के आवेदन पर समाज के कमजोर और दलित वर्ग के लोगों को राहत दिलाने वाले आदेश जारी किए हैं। इसे लोकहित मुकदमा (public interest litigation) कहा जाता है। ऐसे मुकदमों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। लोकहित मुकदमों के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने सरकार को पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण पर रोक, वन्य जीवन संरक्षण और स्वच्छता जैसे बहुत से क्षेत्रों में अपना कर्तव्य निभाने के निर्देश दिए हैं।

इस प्रकार मूल अधिकार जहाँ एक ओर देश में लोकतांत्रिक प्रणाली के समुचित रूप से कार्यकरण के लिए तात्पर्यित हैं वहां दूसरी ओर नागरिकों की शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति तथा उनकी गरिमा और प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखते हैं।

(धर्म का मूल)

धर्मस्य मूलमर्थः।। 2।।ब

धर्म का मूल अर्थ है।

विवरण– धर्म अर्थात् नीतिमत्ता को सुरक्षित रखने में राज्य श्री (अर्थात् सुदृढ सुपरीक्षित सुचिन्तित राज्यव्यवस्था) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जगत् को धारण करने (जगत् को ऐहिक अभ्युदय तथा मानसिक उत्कर्ष देने) वाली नीति को राष्ट्र में सुरक्षित रखने में अर्थ अर्थात् राज्यश्री ही मुख्य कारण होती है। राजकोष में दरिद्रता आजाने पर प्रजा में अनीति की बाढ आ जाती है। क्योंकि तब राज्य के पास अनीति रोकने वाला साधन नहीं होता। राज्यसंख्या जितनी ही संपन्न और तेजस्वी होती है, प्रजा उतनी ही नीतिपरायण रहती है। राजकोष में दरिद्रता आ जाने पर राष्ट्र–व्यवस्था ग्रीष्मकालीन कुनदियों के समान लुप्त हो जाती है।

चाणक्य सूत्राणि

अध्याय – 4

मूल कर्तव्यों का अंतर्राष्ट्रीय उद्‌भव

भारत के नागरिकों के इतने अधिकार, जिनका पिछले अध्याय में उल्लेख किया गया है, संविधान द्वारा प्रदान किए गए किन्तु उसमें उनके कर्तव्यों का कहीं उल्लेख नहीं था। किन्तु विधि शास्त्र में अधिकारों और कर्तव्यों को सह सम्बंधी कहा गया है। उनका अन्योन्याश्रित सम्बंध है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं हो सकता। इस प्रकार बिना कर्तव्य के कोई अधिकार नहीं हो सकता और बिना अधिकार के कोई कर्तव्य नहीं हो सकता। तथापि प्राचीन भारतीय विधिक प्रणाली में कर्तव्यों पर ही जोर दिया गया है न कि अधिकारों पर। यहाँ के विधिशास्त्रियों की मान्यता थी कि यदि सभी व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करें तो सभी के अधिकार संरक्षित रहेंगे। **प्राचीन भारत में धर्मसूत्रों एवं धर्मशास्त्रों की विशाल संख्या में लोगों के कर्तव्यों का ही उल्लेख है। 'धर्म' एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ बहुत विस्तृत है किन्तु उसका एक अर्थ कर्तव्य भी है।** इस प्रकार सारे धर्मशास्त्र धर्मसंहिताएं हैं, अर्थात् कर्तव्य संहिताएं हैं। इसीलिए मनुस्मृति को मनु की संहिता भी कहा गया है। मनुस्मृति के अध्यायों के शीर्षकों को देखने से ही ज्ञात हो जाएगा कि वे राजा को सम्मिलित करते हुए समाज के विभिन्न वर्गों एवं व्यक्तियों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय विधिनिर्माताओं ने केवल 'कर्तव्यों' की ही बात सोची है और अधिकार के बारे में उन्होंने कदाचित् ही कुछ कहा। उन्होंने 'कर्तव्य पालन' को स्वयं के विकास के लिए अनिवार्य बना कर, कर्तव्य की कठोरता को समाप्त कर दिया।

अधिकार के दावे का, अंतिम विश्लेषण में यह अर्थ होगा कि ऐसा कार्य जो किसी अन्य के हित के अनुरूप न होगा।

इस बात पर प्राचीन भारतीय विधिशास्त्रियों और कतिपय आधुनिक विधिशास्त्रियों के विचारों में बड़ी समानता पाई जाती है। विधि की समाजशास्त्रीय विचारधारा के एक बड़े **पाश्चात्य चिंतक ड्यूगिट महोदय प्राइवेट अधिकारों के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं।** कॉमटे की तरह उनका भी यह कथन है–

"एकमात्र **अधिकार जो किसी मनुष्य का हो सकता है, वह सदैव अपना कर्तव्य करने का अधिकार है।** किसी भी हैसियत में कार्य करने वाले व्यक्ति एक ही सामाजिक संगठन के भाग हैं और प्रत्येक को उसी लक्ष्य अर्थात् "सामाजिक समेकता" की पूर्ति के लिए अपनी भूमिका निभानी होती है।"

उसी प्रकार विधि के विशुद्ध सिद्धांत के प्रवर्तक एक **महान् विधिशास्त्री केल्सन ने भी यही मत व्यक्त किया है,** यद्यपि वे एक भिन्न आधार–भूमि से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। केल्सन के अनुसार भी विधि में व्यक्तिगत अधिकार जैसी कोई वस्तु नहीं है। **विधिक कर्तव्य ही "विधि का सार" है।** "विधि सर्वदा" होना चाहिए की एक प्रणाली है। अधिकार की संकल्पना किसी विधिक प्रणाली के लिए मूलतः अनिवार्य नहीं है। "विधिक अधिकार उसकी पूर्ति की अपेक्षा करने के हकदार व्यक्ति की दृष्टि में केवल कर्तव्य के रूप में है।"

अधिकारों पर संविधान निर्माताओं और न्यायालयों द्वारा इतना जोर दिए जाने के मुख्य कारण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। निरंकुश शासकों के अधीन देशों और उपनिवेशी देशों में जनता के कोई अधिकार नहीं थे। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अधिकारों के लिए जनता की अतिशय आकांक्षा की दृष्टि से ऐसे देशो के संविधानों में अधिकारों अथवा मूल अधिकारों का प्रावधान किया गया। भारत में भी संविधान में मूल अधिकारों का प्रावधान आधुनिक काल के संविधानों में ऐसे प्रावधान की अनिवार्य रूप से विद्यमानता की दृष्टि से किया गया।

तथापि देश की एकता, अखंडता, रक्षा और समृद्धि के लिए नागरिकों के कर्तव्यों का होना परम आवश्यक है।

गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध से विश्व के अनेक देशों के संविधानों में नागरिकों के कर्तव्य विहित किए गए हैं। ऐसे कुछ संविधानों और उनमें विहित नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख समीचीन होगा।

जापान के संविधान 1946 के अध्याय 3 का शीर्षक है "लोगों के अधिकार और कर्तव्य"। इस अध्याय का अधिकांश भाग लोगों के अधिकार का कथन करता है तथापि यह उनके कुछ कर्तव्यों का भी उल्लेख करता है। वे कर्तव्य हैं:–

1. माता पिता का यह दायित्व है कि वे अपने बच्चों को राज्य द्वारा दी जाने वाली अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा को प्राप्त करने के लिए भेजें।
   (अनु0 : 26)
2. सारे लोगों का यह काम करने का दायित्व होगा।
   (अनु0 : 27)

वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के संविधान (1946) के अध्याय 3 में नागरिकों के मूल अधिकार और कर्तव्य दिए हुए हैं। उक्त अध्याय में नागरिकों के मूल कर्तव्य अग्रलिखित हैं–

अनु0 : 39

वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के नागरिक संविधान और विधि का अवश्य पालन करें, कार्य में अनुशासन कायम रखें, लोक व्यवस्था बनाए रखें और सामाजिक आचार का सम्मान करें।

अनु0 : 40

वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य की लोक संपत्ति पवित्र और अनुल्लंघनीय है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह लोक संपत्ति का समादर करे और उसकी रक्षा करे।

अनु0 : 41

वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे विधि के अनुसार करों की अदायगी करें।

अनु0 : 42

पितृ भूमि की रक्षा करना वियतनाम के लोकतंत्रात्मक गणराज्य का सबसे पुनीत और श्रेष्ठ कर्तव्य है। पितृ भूमि की रक्षा करने के लिए सैन्य सेवा करना नागरिकों का कर्तव्य है।

युगोस्लाविया के समाजवादी संघ गणराज्य के संविधान (1974) के अध्याय 3 में मनुष्य और नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें नागरिकों के कुछ मुख्य कर्तव्य निम्नलिखित हैं –

अनु0 : 59

यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह खतरे में पड़े किसी की भी सहायता करे और उसे मदद दे और किसी आम खतरे के निवारण में अन्य लोगों के साथ भाग लें।

अनु0 : 60

देश की रक्षा प्रत्येक नागरिक का अधिकार और परम कर्तव्य और गौरव है।

अनु0 : 61

प्रत्येक नागरिक अपने को सौंपे गए किसी एक या अन्य सामाजिक कृत्यों का अंतर्विवेकपूर्वक पालन करेगा और इसके पालन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

अनु0 : 62

प्रत्येक नागरिक समुदाय की तात्त्विक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कानून द्वारा अवधारित समान दशाओं में योगदान करेगा।

अनु0 : 63

प्रत्येक व्यक्ति संविधान और विधि का पालन करेगा। वे दशाएं जिनमें प्रस्तुत संविधान द्वारा स्थापित कर्तव्यों का पालन करने में विफलता दंडनीय होगी, कानून द्वारा आवधारित होगी।

दक्षिण कोरिया का संविधान 1949 अपनी उद्देशिका में अन्य बातों के साथ राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के पक्के इरादे से अपना संविधान संशोधित करने की बात कहता है।

संविधान के अध्याय 2 में नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों को विहित किया गया हैं। इसमें प्रत्यक्ष रूप से 3 कर्तव्य विहित किए गए हैं।

32. कार्य करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। राज्य विधि–द्वारा प्रजातांत्रिक सिद्धांतों की अनुरूपता में कर्तव्य का विस्तार और उसकी दशाएं विहित करेगा।

38. सारे नागरिकों का उन स्थितियों में जैसी विधि द्वारा विहित की जाए, कर अदा करने का कर्तव्य है।

39. सैन्य सेवा –

1. सारे नागरिकों का विधि द्वारा विहित दशाओं के अधीन राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का कर्तव्य है।

2. अपनी सैन्य सेवा के दायित्व की पूर्ति के कारण किसी नागरिक से प्रतिकूल रूप से नहीं बरता जाएगा।

पोलिश गणराज्य के संविधान (जिसे जुलाई 1952 में अंगीकार किया गया) के अध्याय 7 में नागरिकों के मूल अधिकारों और कर्तव्यों का प्रावधान किया गया है। मुख्य कर्तव्य निम्नलिखित हैं–

अनु0 : 76

पोलिश जन गणराज्य के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह संविधान और विधि के उपबंधों का पालन करें तथा अनुशासन कायम रखें। सामाजिक समागम के नियमों का समादर करे और राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का अंतर्विवेकपूर्वक पालन करें।

अनु0 : 77

(1) पोलिश जन गणराज्य के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह सामाजिक संपत्ति जो राज्य के विकास की अडिग आधार है, देश के धन और शक्ति का साधन है इसकी सुरक्षा करे और उसे सबल बनाए।

(2) वे व्यक्ति जो सामाजिक संपत्ति का ध्वंस करते हैं, खराब करते हैं, नुकसान पहुँचाते हैं अथवा जो हानि पहुँचाते हैं वे विधि की सारी कड़ाई के साथ दंडनीय हैं।

अनु0 : 78

(1) देश की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का सर्वाधिक पुनीत कर्तव्य है।

(2) सैन्य सेवा पोलिश जन गणराज्य के नागरिक का एक सम्माननीय देश भक्ति का दायित्व है।

अनु0 : 79

(1) राष्ट्र के शत्रुओं के विरुद्ध चौकसी, राज्य की गोपनीय बातों की तत्परता से रक्षा, पोलिश गणराज्य के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

(2) गंभीर राजद्रोह – जासूसी, सशस्त्र बलों को दुर्बल बनाना, सेना से भागकर शत्रु से जा मिलना गंभीरतम अपराधों के रूप में विधि की सारी कड़ी कड़ाई के साथ दंडनीय है।

सोवियत संघ के 1977 के संविधान में अध्याय 7 था जिसका शीर्षक निम्नलिखित है "नागरिकों के मूलभूत अधिकार, स्वतंत्रताएं और कर्तव्य।"

अनुच्छेद 59 में अधिकारों और कर्तव्यों को एक ही दर्जे पर रखा गया है।

नागरिकों द्वारा अपने अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का प्रयोग अपने कर्तव्यों और दायित्वों के पूरा किए जाने से जुड़ा हुआ है।

चीन का 1982 का संविधान अध्याय – दो में नागरिकों के मूल अधिकारों और कर्तव्यों को एक साथ रखता है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए कि कर्तव्य केवल एक शिष्टाचार मात्र नहीं है आरंभिक अनुच्छेद 33 (3) में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि अधिकारों के उपयोग के लिए कर्तव्यों का पालन एक शर्त है। "प्रत्येक नागरिक अधिकारों का उपभोग करता है और इसके साथ ही संविधान और विधि द्वारा निहित कर्तव्यों का पालन उसे अवश्य करना चाहिए।"

नागरिकों के निम्नलिखित कर्तव्य :–

1. मातृभूमि के प्रति कर्तव्य

(क) चीन के गणराज्य के नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे मातृभूमि की सुरक्षा सम्मान और हितों को संरक्षित करें, वे ऐसे कार्य न करें जो मातृभूमि की सम्मान और हितों के प्रतिकूल हों। (अनु0 : 54)

2. चीन जन गणराज्य के प्रत्येक नागरिक का यह पुनीत दायित्व है कि वह मातृभूमि की रक्षा करे और आक्रमण का प्रतिरोध करे। (अनु0 : 55)

3. चीन के जन गणराज्य के नागरिकों का यह सम्माननीय दायित्व है कि वह सैनिक सेवा करे और विधि के अनुसार सेना में जाए।

(ख) राष्ट्र की एकता और अखंडता कायम रखने का कर्तव्य

चीन के जन गणराज्य के नागरिकों का यह दायित्व है कि वे देश की एकता और इसकी सारी राष्ट्रीयताओं की एकता का संरक्षण करें। (अनु0 : 52)

(ग) संविधान का पालन करना

"चीन जन गणराज्य के नागरिक संविधान और विधि का अवश्य पालन करें, राज्य की गोपनीय बातों को न प्रकट करें, लोक संपत्ति की संरक्षा करें और श्रम अनुशासन और लोक व्यवस्था का पालन करें और सामाजिक नैतिकता के प्रति सम्मान रखें।" (अनु0 : 53)

(घ) राज्य की गोपनीय बातों को प्रकट न करना (अनु0 : 53)

(ड.) लोक संपत्ति की संरक्षा

(च) श्रम अनुशासन का पालन

(छ) लोक व्यवस्था का पालन

(ज) सामाजिक नैतिकता का सम्मान

करों को अदा करना

चीन के जन गणराज्य के नागरिकों का यह दायित्व है कि वे विधि के अनुसार करों की अदायगी करें। (अनु0 : 26)

(झ) **काम करने का कर्तव्य**

अनुच्छेद 42 (3) में प्रावधान है :–

कार्य करना प्रत्येक समर्थ शरीर वाले व्यक्ति का गौरवपूर्ण कर्तव्य है।

(ञ) शिक्षा प्राप्त करने का कर्तव्य (अनु0 : 46 (1))

(ट) परिवार के प्रति कर्तव्य

माता पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपने अवयस्क बच्चों का पालन पोषण करें और उन्हें शिक्षा दिलाएं और वयस्क बच्चों का यह कर्तव्य है कि वे अपने माता पिता का भरण पोषण और सहायता करें।

वृद्ध व्यक्ति, महिलाओं और बच्चों से दुर्व्यवहार का निषेध (अनु0 : 48)

परिवार नियोजन बरतने का कर्तव्य

"पति और पत्नी दोनों का यह कर्तव्य होगा कि वे परिवार नियोजन के कर्तव्य का पालन करें (अनु0 : 49)

ऐसे धार्मिक क्रिया–कलापों में न लगने का कर्तव्य जो लोक–व्यवस्था को भंग करें, नागरिकों के स्वास्थ्य को खराब करे अथवा राज्य की शिक्षा प्रणाली में हस्तक्षेप करें (अनु0 36 (3))

ब्राजील का संविधान (1988) अपने मूल अधिकार और गारंटियों वाले भाग में पहले अध्याय का "व्यक्ति और सामूहिक अधिकार एवं कर्तव्य" शीर्षक देता है। इसमें कोई कर्तव्य अलग से नहीं दिया गया है। तथापि इसमें उल्लिखित अधिकार इस उपधारणा पर स्थित है कि उल्लिखित अधिकार, अधिकार के हकदार व्यक्ति के अलावा शेष व्यक्तियों के कर्तव्य हैं। इसके एक अनुच्छेद में कुछ अधिकारों का उल्लेख किया गया है। जो एक प्रकार से नागरिकों के कर्तव्य है। वे निम्नलिखित हैं :–

अनुच्छेद 73 में प्रावधान है कि प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह ऐसे किसी कार्य को निराकृत कराने के लिए कार्रवाई संस्थित कर सके जो लोक सम्पत्ति के प्रति या किसी संस्था की सम्पत्ति जिसमें राज्य की सहभागिता हो के प्रति, प्रशासनिक नैतिकता के प्रति, वातावरण के प्रति और ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्मारकों के प्रति हो और वादी को उसकी साबित हुई दुर्भावना की स्थिति को छोड़कर न्यायालय के खर्चों से और बाद में असफल होने पर भार से मुक्ति होगी।

श्रीलंका का संविधान (1997) अपनी उद्देशिका में कहता है कि लंका के लोग एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना और उसे मजबूत बनाना चाहते हैं जिसमें अन्य बातों के अलावा राष्ट्र की राज्यक्षेत्रीय अखण्डता, स्वतंत्रता और एकता, जिसमें भूमि और आसमान में इसकी प्रभुसत्ता संबंधी अधिकार सम्मिलित हैं, सुरक्षित की जाएगी।

यह अपने अनुच्छेद 51 में नागरिकों के कतिपय मूल कर्तव्यों को विहित करता है।

वे निम्नलिखित हैं :–

(क) श्रीलंका की प्रभुसत्ता, एकता और अखंडता को कायम रखना और उसकी रक्षा करना।

(ख) संविधान, इसके आदर्श और संस्थाओं को कायम रखना और उनकी रक्षा करना।

(ग) राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना और लंका के सभी लोगों के सामंजस्य को बढ़ाना।

(घ) दूसरे के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का समादर करना।

(ङ) हमारी सामासिक संस्कृति की समृद्ध परम्परा को महत्त्व देना और उसका परिरक्षण करना।

(च) वातावरण की रक्षा करना और उसमें सुधार करना और उसकी समृद्धि का सरंक्षण करना।

(छ) राष्ट्रीय महत्त्व के कलात्मक अथवा ऐतिहासिक वस्तुओं और स्थानों की रक्षा करना और उनका संरक्षण करना।

(ज) लोक सम्पत्ति की रक्षा करना और उसे बचाना और उसकी बर्बादी अथवा दुरुपयोग को रोकना।

(झ) प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से घूस अथवा भ्रष्टाचार से दूर रहना।

(ञ) विधि के शासन को कायम रखना और हिंसा को त्यागना।

(ट) किसी व्यक्ति द्वारा अपने चुने हुए धंधे में अपने अन्तर्विवेक से काम करना।

यूनान का संविधान 2001 अनुच्छेद 120 में उपबंध करता है कि संविधान और उसकी विधियों के प्रति सम्मान और पितृभूमि और प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा सभी यूनानियों का मूल कर्तव्य है।

संविधान का पालन यूनानियों की देशभक्ति को सौंपा गया है जिनका यह अधिकार और कर्तव्य होगा कि वे उस किसी का सभी संभव साधनों से प्रतिरोध करें जो संविधान के हिंसात्मक उन्मूलन का प्रयत्न करता हो।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 29 (1) में भी कर्तव्यों के बारे में उल्लेख है जो निम्नलिखित रूप में है। प्रत्येक व्यक्ति का उस समुदाय के प्रति कर्तव्य है जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।

उपर्युक्त संविधानों में अंतर्विष्ट नागरिकों के कर्तव्यों के एक विहंगावलोकन से यह ज्ञात होगा कि इन कर्तव्यों में संविधान, उसके आदर्शों और संस्थाओं का सम्मान करना, राष्ट्र की एकता और अखंडता को कायम रखना, देश की रक्षा करना, लोक सम्पत्ति की रक्षा करना, राज्य के हितों की रक्षा करना, पर्यावरण की रक्षा करना, सामाजिक अनुशासन कायम रखना आदि हैं। भारत के संविधान में अंतर्विष्ट मूल कर्तव्यों का अवधारण करने में इनका प्रभाव पड़ा होगा। इसके साथ ही यहाँ के मूल कर्तव्यों में भारतीय संस्कृति के आदर्शों जैसे नारी का सम्मान प्राणी मात्र पर दया आदि भी समाविष्ट किए गए हैं। अगले अध्याय में इन कर्तव्यों का उल्लेख किया जाएगा।

(विनय का मूल)

विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।। 6।।

ज्ञानवृद्धों की सेवा विनय का मूल है।

विवरण– विनय अर्थात नैतिकता, नम्रता, उचितज्ञता, शासनकुशलता, आदि रूपों वाली सत्यरूपी स्थिर संपत्ति अनुभवी ज्ञानवृद्ध लोगों की सेवा में श्रद्धापूर्वक बार–बार ज्ञानार्थी रूप में उपस्थित होते रहने से ही प्राप्त होता है। मनुष्य को ज्ञानवृद्धों के सत्संग से सत्यरूपी स्थिर धन प्राप्त हो जाता है। मनुष्य विद्या, तपस्या और अनुभव से ज्ञानवृद्ध बनता है। ज्ञानवृद्धों के पास जाकर उनकी योग्य परिचर्या करते हुए जिज्ञासु या शुश्रूषु बने रहना वृद्ध सेवा कहलाती है। ज्ञानवृद्धों पास बार बार जाते रहने से उनकी विद्या, तपस्या तथा उनके दीर्घकालीन अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है। ज्ञानवृद्ध लोग पात्र से बाहर बहना त्यागकर भंडार में आ जानेवाली शरत्कालीन नदियों के समान मर्यादापालक तथा कार्याकार्यविवेकसंपन्न होते हैं। दण्डनीति तथा व्यवहारकुशलता के पाठ ऐसे ज्ञानवृद्धों से ही सीखे जा सकते हैं। ज्ञानवृद्धों की सेवा से विनीत राजा ही प्रजा को विनय के पाठ सिखा सकता है और राज्य भोग सकता है।

(शासन–कुशलता सीखने का साधन)

वृद्धसेवाया विज्ञानम्।। 7।।

विजिगीषु मनुष्य वृद्धों की सेवा से व्यवहार कुशलता या कर्तव्याकर्तव्य पहचानना सीखे।

विवरण– विज्ञान अर्थात् ज्ञान की परिपक्वावस्था अर्थात् यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति कि वा अपने ज्ञान को व्यवहारभूमि में ला खडा करने की कला अर्थात् कार्यकुशलता या कर्तव्याकर्तव्य का समुचित परिचय तब प्राप्त है, जब मनुष्य आग्रह और श्रद्धा से ज्ञानवृद्धों के पास निरन्तर उठता बैठता रहता, उनके वातावरण का अंग बनकर रहता, उन्हें अपनी भूलें बताने और उन पर निःशंक टोकते रहने का अप्रतिहत असीम अधिकार देकर रखता है। ज्ञानवृद्धों की श्रद्धामयी सेवा से जहां विनय प्राप्त होता है वहां विज्ञान अर्थात् कार्यकुशलता भी आ जाती है।

चाणक्य सूत्राणि

अध्याय – 5

मूल कर्तव्य

जैसा पिछले अध्याय में बताया गया है अनेक देशों के संविधानों में नागरिकों के कर्तव्यों को विहित किया गया है। किंतु ऐतिहासिक कारणों से जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, भारत के संविधान के निर्माण के समय मूल अधिकारों को विशेष महत्त्व मिला। उसमें नागरिकों के कर्तव्यों का समावेश नहीं किया गया। तथापि बाद में यह अनुभव किया गया कि नागरिकों के अधिकारों की अनुरूपता में राष्ट्र, समाज तथा स्वयं व्यक्ति के हित में नागरिकों के कर्तव्यों का भी होना आवश्यक है।

वस्तुतः भारतीय संविधान की उद्देशिका का भी एक अंग ऐसा है जो कर्तव्यों की ओर इंगित करता है किंतु उस पर ध्यान नहीं दिया गया है। संविधान का अध्ययन करने वाले उसे एक कर्मकांड के रूप में देखकर आगे बढ़ जाते हैं। यह अंग वह है जहाँ कहा गया है कि न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराने के लिए, "तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए"

इस प्रकार उद्देशिका में लिखित आदर्शों को प्राप्त करने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने की बात कही गई है। यह स्पष्ट है कि व्यक्तियों के बीच बंधुता बढ़ाना एक कर्तव्य है, जिससे व्यक्ति की गरिमा बढ़ेगी और राष्ट्र की एकता और अखंडता भी सुनिश्चित होगी। राष्ट्र की एकता और अखंडता के अभाव में राष्ट्र पर ही संकट उत्पन्न हो सकता है और फिर व्यक्ति के सारे अधिकार जो उद्देशिका के पूर्वार्द्ध में गिनाए गए हैं, समाप्त हो जाएंगे। इस प्रकार, व्यक्तियों के बीच बंधुता बढ़ाना प्रत्येक नागरिक का परम उत्तरदायित्व है। स्पष्ट है कि बंधुता बढ़ाने का कार्य किसी कानून द्वारा नहीं हो सकता। यह व्यक्तियों में भ्रातृभावना का प्रसार करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इस भावना के प्रचार–प्रसार के लिए संविधान में कोई प्रावधान नहीं था। मूल कर्तव्यों का संविधान में समावेश किया जाना उस कमी की पूर्ति करता है। यदि मूल कर्तव्यों को एक गहरी और विस्तृत दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि मूल कर्तव्य भ्रातृभावना और "राष्ट्र भावना को दृढ़ बनाने हेतु हैं।" इनमें राष्ट्र निर्माण और व्यक्तियों के मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान निहित हैं। यह प्रावधान बयालीसवें (संविधान संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अंतः स्थापित किया गया । उक्त संशोधन के उद्देश्यों एवं कारणों के कथन में कहा गया है :–

...."यह भी आवश्यक समझा गया कि नागरिकों के कर्तव्यों को विनिर्दिष्ट किया जाए और व्यक्तियों और संगठनों के राष्ट्र विरोधी कार्यकलापों से निपटने के लिए विशेष प्रावधान किया जाए।"

मूल कर्तव्यों के महत्त्व को देखते हुए संविधान का एक संपूर्ण भाग अर्थात् भाग–IVक उन्हें अंतर्विष्ट करता है। उक्त भाग–IVक के अनुच्छेद 51क में उन्हें अधिकथित किया गया है। अनुच्छेद 51क में कहा गया है :–

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र–ध्वज और राष्ट्र–गान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरूपता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्गित और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।

प्रारंभ में उक्त 10 मूल कर्तव्य ही संविधान में समाविष्ट किए गए थे। किन्तु बाद में संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा एक ग्यारहवां मूल कर्तव्य भी कर्तव्यों की सूची में जोड़ा गया है। वह इस प्रकार हैः

(ट) यदि वह माता–पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

भारत के विधि आयोग और संविधान के कार्यकरण के पुनरीक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग ने उक्त मूल कर्तव्यों में दो और कर्तव्यों को जोड़ने की संस्तुति की है जो निम्नलिखित हैं :–

(1) परिवार के मूल्यों की भावना और बच्चों की शिक्षा, शारीरिक और नैतिक कल्याण के बारे में उत्तरदायी मातृ–पितृत्व को बढ़ावा देना।

(2) औद्योगिक संगठनों का अपने कर्मचारियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने का कर्तव्य।

यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त ग्यारह कर्तव्य गयारह पवित्र संवैधानिक निदेश हैं जिनका देश के हर नागरिक को पालन करना है। वर्तमान स्थिति में, इन कर्तव्यों के पालन से ही राष्ट्र आज की गंभीर चुनौतियों का सामना कर सकता है और राष्ट्र की एकता, अखंडता और उन्नति सुनिश्चित हो सकती है तथा नागरिकों का बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है।

अगले अध्यायों में इन कर्तव्यों की व्याख्या और उनका विस्तार से विवेचन किया जाएगा।

(अर्थ का मूल)

अर्थस्य मूलं राज्यम्।। 3।।

राज्य (राज्य की स्थिरता) ही अर्थ (धन–धान्यादि संपत्ति या राज्यैश्वर्य) का मूल (प्रधान कारण) होता है।

विवरण– राज्य की स्थिरता ही ऐश्वर्य को स्थिर रखने वाली वस्तु है। ऐश्वर्यहीन राज्य परस्पर व्याहत अव्यावहारिक कल्पना है। राज्य तो हो पर उसे स्थिर रखनेवाला ऐश्वर्य उसके पास न हो तो राज्य स्थिर नहीं रह पाता। राजा और प्रजा दोनों ही अर्थ से ऐहिक अभ्युदय वाले कर्म करके जीवनयात्रा करते हैं। राजा को राष्ट्र, दुर्ग, कुल्या, बांध, सेना, मन्त्री, राज्यकर्मचारी, शस्त्रास्त्र, रणपोत, अश्व, रथ आदि विविध प्रकार के यान आदि संग्रह करके तथा प्रजा की रक्षा–शिक्षा भरण–पोषण आदि में विपुल धन की आवश्यकता होती है। क्योंकि अर्थागम राज्य के सुप्रबन्ध पर ही निर्भर होता है, इस लिये राज्याधिकारी लोग राज्य को सर्वप्रिय बनाकर स्थिर बनाने में प्रमाद से काम न लें।

चाणक्य सूत्राणि

अध्याय – 6

संविधान का पालन और राष्ट्र ध्वज तथा राष्ट्रगान का आदर

संविधान के अनुच्छेद 51क (क) में यह प्रथम मूल कर्तव्य निम्नलिखित रूप में कथित है :–

"संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।"

संविधान का पालन करना और इसके आदर्शों तथा संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज तथा राष्ट्रगान का आदर करना नागरिकों का प्रथम कर्तव्य बनाया गया है। वस्तुतः यह प्रत्येक नागरिक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। इस कर्तव्य की व्याख्या करने के पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि यह उल्लेख कर दिया जाए कि संसद् में कुछ सदस्यों द्वारा उक्त कर्तव्य में राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगान के साथ राष्ट्र भाषा अर्थात् हिन्दी को भी रखने का प्रस्ताव रखा गया था और इसके लिए सबल तर्क उपस्थित किए गए थे। इनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख करना सुसंगत होगा।

राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान के साथ राष्ट्रभाषा को जोड़े जाने का संशोधन पेश करते हुए लोक सभा के सदस्य श्री शंकर दयाल सिंह ने कहा :–

"हमारे कानून मंत्री गोखले जी ने जो मूल कर्तव्य यहाँ जोड़े हैं उनमें पहला क्या है? संविधान का पालन और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे। मैं बड़े ही अदब के साथ कहना चाहता हूँ कि जहाँ आप ने राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान की बात कही है वहीं आप को राष्ट्र भाषा की बात भी कहनी चाहिए। आपने नेशनल ऐंथम कहा, उसके साथ साथ नेशनल फ्लैग कहा तो नेशनल लैंग्वेज को नहीं रखा जब कि भारत का संविधान, अनुच्छेद 343 में यह कहता है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। यह मैं नहीं कह रहा हूँ। यह तो संविधान में दिया हुआ है। या तो इस को डिलीट कर दीजिए और अगर इस को नहीं रख रहे हैं तो मूल कर्तव्यों में आप को इसे भी जोड़ना बहुत आवश्यक है।

मुझे बड़े दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि कल जब फ्रैंक एंथोनी साहब बोल रहे थे, आज वह यहाँ हैं नहीं, लेकिन वह इस सदन के एक सदस्य हैं, जब वह बोल रहे थे तो ऐसा लग रहा था कि हाउस ऑफ लॉर्ड्स या हाउस ऑफ कॉमन्स का कोई सदस्य बोल रहा हो। अंग्रेजी की, एक विदेशी भाषा की कोई वकालत करे और भारतीय भाषाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखे, यह किसी को सह्य नहीं होगा। हम यह मानते हैं कि भारत की सभी भाषाएं फलें फूलें चाहे वह उड़िया हो, मलयालम हो या तेलगू हो, सब को स्थान मिलना चाहिए और हिन्दी को भी मिलना चाहिए। लेकिन एक विदेशी भाषा की, जब हम वकालत करते हैं तो मुझे ऐसा लगता है कि जिस व्यक्ति ने इसकी वकालत की, उस का दिमाग अभी भी साफ नहीं है और अभी भी वह उसी रूप में सोचता है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि एक जो यह साजिश चल रही है कि एट्थ शेड्यूल में अंग्रेजी को भी हम रख दें, यह कभी नहीं होना चाहिए। इससे हमारा संविधान अपमानित हो जाएगा।

एक बात मैं और विनीत स्वर में कहना चाहता हूँ कि संविधान की धारा 343 और 351 में हिन्दी और देवनागरी को एक स्थान दिया गया है लेकिन कार्य रूप में उसका पालन कभी नहीं होता है। हमने हिन्दी को राजभाषा मान लिया और देवनागरी को लिपि मान लिया लेकिन जब तक उसका व्यवहार सरकारी अधिकारियों और मंत्रियों की ओर से नहीं होगा तब तक नीचे के स्तर पर कैसे हो सकता है? जब आप संविधान बनाते हैं तो जब संविधान के नियमों की रक्षा आप और हम करेंगे तभी सामान्य जनता भी करेगी। मैं कहना चाहता हूँ कि बुद्धिजीवी ही सभी चीजों के ठेकेदार नहीं हैं। जो सामान्य आदमी है, वही सामान्य आदमियों की समस्याओं को समझता है। जो बुद्धिजीवी होते हैं वे जटिलता पैदा करते हैं जिससे गरीब आदमियों की उपेक्षा होती है। अभी हमारे विभूति मिश्र जी बड़े दर्द के साथ बोले, हरि सिंह जी भी दर्द के साथ बोल रहे थे और हमारे श्री राम गोपालन् रेड्डी भी उस दर्द के साथ बोलने वाले हैं। हमारा कहना यह है कि गरीबों के लिए आपने इस में जो चीजें रखी है, उनकी जानकारी भी उनको पहुँचानी चाहिए, इसके लिए अधिक से अधिक व्यवस्था होनी चाहिए।

सभापति जी, एक बात की ओर मैं जरूर इस वक्त आप का ध्यान दिलाना चाहता हूँ। जब यह संविधान पारित हुआ था, उस समय यह तय हुआ था कि 15 वर्षों के बाद अंग्रेजी का स्थान गौण हो जाएगा और हिन्दी की प्रधानता हो जाएगी। लेकिन ऐसा न हो सका। उसके बाद 1963 में एक कानून पास हुआ, कायदा यह है कि जो भी कानून पास होता है, उसके चार छः महीने के अन्दर उसके रूल्स बन जाया करते हैं, परन्तु वे रूल्स भी नहीं बन सके। लेकिन एक खुशी की बात यह हुई कि जिस दिन इस देश में एमरजेन्सी कायम हुई यानी 26 जून, 1975 को उस दिन ,एक नये विभाग की रचना हमारी प्रधानमंत्री जी ने की – एक राजभाषा विभाग अलग से बनाया गया और यह भी एक खुशी की बात है कि 28 जून, 1976 को रूल्स बन गए – 12 रूल्स बने जो 17 जुलाई को गजट में प्रकाशित हुए और उसी दिन से लागू हो गए। अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि ये रूल्स हमारे सामने आ गए हैं जिस तरह से आप अन्य कानूनों को एन्फोर्स करते हैं, उसी तरह से भाषा के संबंध में, हिन्दी के संबंध में अन्य भारतीय भाषाओं के संबंध में जो कानून और नियम बने हैं, उनको दृढ़ता के साथ, सजगता के साथ लागू कीजिए, उनका पालन कीजिए।"[1]

अगले दिन की कार्यवाही में माननीय सदस्य ने आगे कहाः

हम बार–बार इस बात को कहते हैं कि संविधान के प्रति हमें आदर करना चाहिए और मूल कर्तव्यों में सबसे पहला कर्तव्य यही है कि संविधान के प्रति आदर और सम्मान रहे। अब सभापति जी, हमारे संविधान में कहा गया है कि राज भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है, लेकिन इसी सदन में दो दिन पहले एक माननीय सदस्य ने, जो हम लोगों की तरह से चुन कर नहीं आए हैं, जिनको हम लोगों की तरह से दस लाख जनता का सामना नहीं करना पड़ा है, नौमिनेट होकर यहाँ आए हैं – अंग्रेजी की बदौलत, उन्होंने जिस तरह से चुन–चुन कर भारतीय भाषाओं को, हिन्दी को गालियां दीं, क्या यह संविधान का अपमान नहीं हुआ।[2]

उसी क्रम में माननीय सदस्य ने पुनः अगले दिन कहा :

"मूल कर्तव्यों की सूची को देख कर मुझे बड़ा ताज्जुब, निराशा और दुःख हुआ और उससे भी बढ़कर चिन्ता हुई। 51क (क) में कहा गया है : "संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे। "यह बिल्कुल ठीक है। कोई राष्ट्र तब तक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता जब तक वह अपने राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र–गीत का सम्मान न करे। लेकिन उसके साथ ही कोई भी राष्ट्र तब तक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता है, जब तक उसकी अपनी राष्ट्रभाषा न हो।

हमारी राष्ट्रभाषा है, जिसे संविधान में राजभाषा कहा गया है। वह राजभाषा हिन्दी मानी गई है। संविधान सभा ने इस विषय पर बड़ी गंभीरता के साथ विचार किया था। हमारे पूज्य नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 13 सितम्बर, 1949 को संविधान सभा में कहा थाः

"But, at the same time, it created a great gulf between us, who knew Hindi and those who did not know Hindi, and that was a fetter for the progress of the nation. That is a thing which certainly we cannot possibly tolerate, and hence this problem."

उसके बाद संविधान सभा ने यह निर्णय किया था कि देश की राजभाषा, (official language) हिन्दी होगी, क्योंकि कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक लोग हिन्दी समझते हैं, बोलते हैं और कुछ लिखना पढ़ना भी जानते हैं और इसलिए हिन्दी में ही राजभाषा बनने की सामर्थ्य है।

इसलिए मैंने यह संशोधन पेश किया है कि राष्ट्र–ध्वज और राष्ट्र–गान के साथ–साथ राजभाषा का सम्मान करने की भी बात मूल कर्तव्यों में सम्मिलित की जाए। जब हम कहते हैं कि संविधान का पालन करना चाहिए और उसके आदर्शों तथा संस्थाओं का आदर करना चाहिए, तो संविधान में लिखा हुआ है कि हिन्दी हमारी राजभाषा और देवनागरी हमारी लिपि है।

हिन्दी के संबंध में जब कुछ लोग बेतुकी बातें कहते हैं, तो बड़ा आश्चर्य होता है कि हम कैसे उसको सहन कर लेते हैं। हिन्दी के विरुद्ध इस सदन में एक–आध राजनैतिक पार्टियों ने कहा है, या एक–आध ऐसे लोगों ने कहा है, जो नॉमिनेटिड हैं, जिनके पूर्वजों ने चाहा था कि हम अपनी भाषा को, एक विदेशी भाषा को, हिन्दुस्तान पर लाद दें, और वे उनकी वकालत करते रहे हैं।

बिना राष्ट्र–भाषा के राष्ट्र गूंगा होता है। गांधी जी की आत्मा आज यह देख कर दुखी हो रही होगी के इस देश में और सब कुछ तो किया गया लेकिन राष्ट्रभाषा की उपेक्षा की गई है। मैं स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूँ कि हम अपने देश की सभी चौदह भाषाओं का आदर करते हैं और वे सब हमारी राष्ट्रीय भाषाएं हैं। हमारा झगड़ा और तकरार तो अंग्रेजी भाषा के साथ है, एक विदेशी भाषा के साथ है, जो गुलामी की प्रतीक है। अंग्रेज चले गए, लेकिन वे हमारे माथे पर इतना बड़ा कलंक का टीका लगाकर गए हैं कि जब तक हम उसे पोंछ नहीं लेते हैं, तब तक हमारा राष्ट्र बिल्कुल निष्कलंक नहीं हो सकता है।

मैं विधि मंत्री से यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह मेरा व्यक्तिगत निवेदन नहीं है, बल्कि वह इस देश के करोड़ों लोगों की भावना है, जो मैं उन तक पहुँचा रहा हूँ। हाल ही मे मारीशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ और उसके बाद प्रधान मंत्री, श्रीमती इंदिरा गांधी, वहाँ गांधी संस्थान का उद्घाटन करने के लिए गई थी। जो विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ उसमें 33 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उनको यह सुन कर बड़ा आश्चर्य होता था कि हिन्दुस्तान में अभी भी अंग्रेजी चल रही है और इससे भी दुःख की बात यह है कि पार्लियामेंट के हम तीन चार सौ सदस्यों ने प्रधान मंत्री जी को एक ज्ञापन दिया कि यू0एन0 में हिन्दी को स्थान मिलना चाहिए इसलिए कि विश्व में हिन्दी बोलने वालों की संख्या तीसरे नंबर पर है। लेकिन दुःख की बात यह है कि वे लोग चाहते हैं कि हिन्दी न हो जो यह जानते हैं कि हिन्दी होगी तो हम किस मुंह से वहाँ जाएंगे, ऐसे अधिकारी इसका विरोध कर रहे हैं क्योकि हिन्दी अगर हो गई तो हमारी तो रोजी रोटी चली जाएगी। वे समझ रहे हैं कि वे हिन्दुस्तान की ओर से जाएं और हिन्दी ही न जानें तो कैसे काम चलेगा। इसलिए मैं भारत की जनता की ओर से मंत्री महोदय से यह प्रार्थना करता हूँ कि "संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र–ध्वज के पश्चात "राष्ट्र भाषा और राष्ट्र गान का आदर करे" इस प्रकार से इसमें संशोधन कर दिया जाए।

अंत में मैं केवल एक छोटी सी बात और कहना चाहता हूँ। **हमारा देश जिस दिन आजाद हुआ, 1947 में, उस दिन बी0बी0सी0 के प्रतिनिधि गांधी जी के पास गए और कहा कि आप कुछ मैसेज दे दीजिए। गांधी जी ने अपना मैसेज हिन्दी में शुरु किया तो बी0बी0सी0 के अधिकारियों ने कहा कि अंग्रेजी में दे दीजिए। गांधी जी ने कहा कि दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता।** क्यों कहा? भाषा का प्रश्न नहीं है। (कॉलम 184–86, 29–10–76) मैं भी अंग्रेजी पढ़ता हूँ, अंग्रेजी से प्यार करता हूँ, प्रेम करता हूँ,उसका आदर करता हूँ, शेक्सपीयर के प्रति सिर नवाता हूँ लेकिन यहाँ तो राष्ट्र की चेतना का प्रश्न है। इसके लिए आप ने जो स्थान ध्वज को दिया है और जो स्थान राष्ट्रगान को दिया है वही स्थान आप राष्ट्रभाषा को दीजिए। मैं समझता हूँ कि विधि मंत्री जी जब खड़े होंगे, बोलने के लिए, तो सब से पहले यही ऐलान करेंगे कि शंकर दयाल सिंह का एक संशोधन मैंने मान लिया और वह संशोधन राष्ट्रभाषा के संबंध में है।" [1]

उक्त कर्तव्य के बारे में राज्य सभा में बहस के दौरान सदन की सदस्या श्रीमती सुमित्रा कुलकर्णी ने मत व्यक्त किया :–

"यद्यपि यह ठीक है कि जैसे बाइबल में टेन कमांडमेंट्स दिए गए थे कि जो क्रिश्चियन लोग हैं वह इन दस मूल कर्तव्यों का पालन करेंगें तभी उनकी जिन्दगी सुखमय रहेगी और वह स्वर्ग के अधिकारी होंगे। उसी हिसाब से मेरा ख्याल है कि ये दस मूल कर्तव्य हमने अपने संविधान में रखे हैं। इस दस के नंबर को बढ़ाना शायद ठीक न माना जाए मगर मैं अपने दिल में दुःख के साथ और संकोच के साथ और साथ ही बहुत गंभीरता के साथ यह सुझाव देना चाहती हूँ कि इस में एक 11वें कर्तव्य की कमी रह गई है जिसका जोड़ना इसमें परमावश्यक है। हमारे देश में सार्वभौम सत्ता (sovereignity) कुछ चीजों में मानते हैं। जैसे हमारा झंडा है, जैसे हमारा राष्ट्रीय गीत है वह हमारी सार्वभौमिकता का, सावरैनिटी का प्रतीक है, अविभाज्य अंग है। जब तक यह चीज पूरे देश में एक न हो, हमारी सावरैनिटी पूरी नहीं होती। इस प्रकार श्रीमान् हमारे देश की राष्ट्रभाषा भी हमारे लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है। वस्तुतः सांसदों की उक्त मांग औचित्यपूर्णः, युक्ति–युक्त थी अतः सर्वथा स्वीकार योग्य थी, अब उक्त कर्तव्य का विवेचन करते हुए यह कथनीय है कि यह अतिशय समीचीन है कि प्रत्येक नागरिक द्वारा संविधान का पालन किया जाए और उसमें अन्तर्विष्ट आदर्शों एवं संस्थाओं का आदर किया जाए। संविधान मे अन्तर्विष्ट आदर्श उसकी उद्देशिका में लिखित हैं और संस्थाएं, विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका और विभिन्न आयोग हैं जिनके बारे में अध्याय 2 में विवेचन किया गया है।

संविधान का पालन करना इसलिए अनिवार्य है कि यह भारत के लोगों द्वारा अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया है और यह देश को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यह लोगों को न्याय, स्वतंत्रता और समता सुनिश्चित करता है जो अनेक शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् राष्ट्र को उपलब्ध हुई। संविधान का पालन करने से ही ये सदैव बनी रहेंगी।

उसी प्रकार संविधान में अंतर्विष्ट आदर्शों एवं संस्थाओं का आदर करना भी कर्तव्य है।

संविधान देश के राजनीतिक ढाँचे का निरूपण करने और उसके संरक्षण और समुचित कार्यान्वयन हेतु विभिन्न संस्थाओं की स्थापना करने के साथ ही देश के सामाजिक आर्थिक उत्थान हेतु किए जाने वाले कार्यों का समुचित उपबंध करता है। संविधान की उद्देशिका बीज रूप में सबका कथन करती है जिसकी व्याख्या पीछे की जा चुकी है। संविधान के इस आदर्श के आदर से ही उसमें अन्तर्विष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है और राष्ट्र सबल, सुदृढ़ और ऊर्जावान् हो सकता है। उक्त कर्तव्य के अन्तर्गत राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करने के कर्तव्य का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान और उनके आदर हेतु कतिपय मर्यादाओं और नियमों के पालन का कथन करने के पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि "राष्ट्र" शब्द के अर्थ पर प्रकाश डाला जाए।

हिन्दी शब्द कोश के अनुसार "राष्ट्र" शब्द के अनेक अर्थों के साथ एक अर्थ यह दिया गया है 'वह लोक समुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या शासन में रहता हुआ एकताबद्ध हो'। [1]

"राष्ट्र" के आंग्ल भाषा के समानार्थी शब्द "नेशन" का आंग्ल शब्द कोश के अनुसार अर्थ है : 'किसी एक निर्दिष्ट राज्य में बसने वाले लोगों का एक बड़ा समूह जो समान वंश परम्परा से, इतिहास से, संस्कृति अथवा भाषा से आपस में जुडे हुए होते हैं'। [2]

कुछ विस्तार में इसका(राष्ट्र) विवेचन करते हुए –

"राष्ट्र" से तात्पर्य उन लोगों से होता है जो एक निश्चित राज्य क्षेत्र में रहते हैं, जो एकता की भावना सामान्य राजनीतिक आकांक्षाओं, सामान्य हितों और सामान्य भविष्य की कामना से प्रेरित होते हैं। इस प्रकार भिन्न मूल वंश के जनसमूह विभिन्न धर्मों, भाषाओं एवं संस्कृतियों इत्यादि वाले व्यक्ति एक साथ रह सकते हैं और एक ही राज्य के नागरिक के रूप में एकजुटता महसूस कर सकते हैं और उस राज्य में सम्पूर्ण निष्ठा रख सकते हैं। इस प्रकार राष्ट्रत्व जन्म की स्थितियों के ऊपर होता है और राज्य के स्थायी निवासी इसके भीतर आते हैं।

भारत में राष्ट्र शब्द का प्रयोग वेदों के समय से होता रहा है। प्रायः प्रत्येक वेद में इसका प्रयोग किया गया है। अनेक वेद मंत्रों में राष्ट्र की एकता, समृद्धि कल्याण, सुव्यवस्था, न्याय और उसके गौरव की कामना की गई है। उदाहरण रूप में वेदों के कुछ मंत्र/पाठ निम्नलिखित हैं:

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्रयोविश्वे अमृता यथा नः।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरूपमस्य वव्रेः।।

(ऋ0 4–42–1)

विश्व में राष्ट्र की सुरक्षा और सुशासन दोनों में क्षत्रियत्व, द्रव्योपार्जन और उससे उपलब्ध धनों की राष्ट्र में व्यवस्था न्याय और विवेक दोनों पर आधारित हो।

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यो सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः।
परि नोहेलो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम्।।

(ऋ0 7–84–2)

द्यौ रज्जुरहित रोगादि साधनों से पापियों को बांध विशाल सबको प्रसन्नता देने वाला राष्ट्र बनावे। वरुण का क्रोध हमें छोड़ कर दूसरे स्थान पर जावे, इन्द्र हमारे लिए विस्तृत कार्य क्षेत्र निर्माण कर के देवे।।

निम्नलिखित मंत्र में विदेशियों द्वारा राष्ट्र की सम्पदा हथियाने का प्रयत्न और उसमें विफल रहने की बात कही गई है।

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस् एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।।

(ऋ0 10–109–3)

राष्ट्र के अव्यक्त से व्यक्त हुए सुख साधन दूसरों को हाथ से ग्रहण कर लिए जाने योग्य लगते हैं। परन्तु जैसे यज्ञ से उत्पन्न समृद्धि एक गोपनीय पद्धति जैसी उत्पन्न दिखती है वैसे ही बाहर से आए दूत राष्ट्र की सम्पन्नता और वैभव के रहस्य को ढूंढ पाने में विफल रहते हैं।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।।

(ऋ0 10–173–5)

तेरे राष्ट्र को तेजस्वी वरुण स्थिर करे। दानादि गुणों से युक्त बृहस्पति अविचल करे। इन्द्र और अग्नि भी तेरे राष्ट्र को स्थिरता दें।

आ बृह्मनृ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे।
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो
जायतां दोग्ध्री धेनुर्वो ढनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य
यजमानस्य वीरो जायतां निकामे–निकामे नः पर्जन्यो
वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो
नः कल्पताम्।

(यजु0 22–22)

हे महान् शक्ति वाले परमेश्वर। हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों। शूर, बाण भेदने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय, उत्पन्न हों, इस यजमान की गो दूध देने वाली होंः बैल वहनशील हों, घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हों, रथ में बैठने वाला महावीर जयशील पराक्रम करने वाला तरुण, सभा के योग्य उत्तमवक्ता पुत्र उत्पन्न हो। हमारे राष्ट्र में प्रत्येक योग्य अवसर पर जब जब हमें आवश्यकता हो मेघ बरसेः हमारी औषधियां फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों, और हमारा योगक्षेम उत्तम रीति से होता रहे।।

धर्मशास्त्रों में भी "राष्ट्र" शब्द का प्रयोग और उसकी संकल्पना वर्णित है। मनुस्मृति मे कहा गया हैः

राष्ट्रस्य सङ्ग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्
सुसंगृहीत राष्ट्रों हि पार्थिवः सुखमेधत 7–113

राष्ट्र की रक्षा के लिए राज्य नित्य इन उपायों (ऊपर कहे गए) को करें, क्योंकि अच्छी तरह राष्ट्र की रक्षा करने वाला राजा सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करता है।

यह द्रष्टव्य है कि राष्ट्र की रक्षा करना राजा का धर्म बताया गया है।

इस प्रकार राष्ट्र के महत्त्व, उसकी सर्वोपरिता, उसकी समृद्धि की कामना, उसकी रक्षा का संकल्प भारतीय वाङ्मय में अति प्राचीन काल से कहा गया है। राष्ट्रोन्नति के लिए कार्य करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

अथर्ववेद में राष्ट्रोन्नति के सात मूल तत्त्वों का उल्लेख किया गया हैः–

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः
पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य यत्पत्न्यरुं लोकं
पृथिवी नः कृणोतु (अथर्ववेद भूमिसूक्त 12–1)

महान् सत्य, महान् ऋत, क्षात्र शक्ति, तप, ब्रह्मशक्ति और यज्ञ ये सात पृथिवी को अर्थात् हमारे राष्ट्र को धारण कर रहे हैं। हमारे भूतकाल की और भविष्य काल की रक्षा करने वाली वह हमारी पृथिवी मातृ भूमि हमारे लिए विस्तृत प्रकाश और स्थान करे।

वस्तुतः जिस राष्ट्र के व्यक्तियों में उपर्युक्त सातों महाशक्तियाँ विद्यमान रहेंगी अर्थात् जिस राष्ट्र के व्यक्तियों में ये सातों गुण रहेंगे वह राष्ट्र सदा बना रहेगा, उसकी सदा उन्नति होती रहेगी, वह निरन्तर ऊँचा उठता चला जाएगा और उसका गौरव, उसकी भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक चेतना बढ़ती चली जाएगी। ये सातों गुण वास्तव में राष्ट्र की शक्ति के मूल आधार हैं।

राष्ट्र के लोगों में ऋत होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि उन्हें ब्रह्मांड में काम कर रहे भौतिक और आत्मिक नियमों का सच्चा ज्ञान होना चाहिए। उन्हें भौतिक और आत्मिक विद्याओं का पंडित होना चाहिए और इस ज्ञान और इन विद्याओं के अनुकूल उनके आचरण होने चाहिए।

जिस राष्ट्रीयता की परिकल्पना केवल अपने देश में राजनीतिक और आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर की जाएगी वह न केवल स्वरूप–विहीन होगी अपितु विभिन्न राष्ट्रों के बीच संघर्षों को जन्म देगी। यूरोप में मध्यकाल से राष्ट्र राज्यों के निर्माण ने अपने को इस परिकल्पना पर आधृत किया और विश्व में अपने उपनिवेश बनाए। अपने अधीन अधिकतम देशों को करने की भावना ने उपनिवेशवाद को जन्म दिया और विश्व के अधिकांश भाग का आर्थिक, सामाजिक विकास शताब्दियों तक रुका रहा और आज भी वे विकासशील या पिछड़े देश कहे जाते हैं।

भारतीय राष्ट्रीयता का अपना अलग मानवतावादी दृष्टिकोण है जो देश में सभी नागरिकों के बीच समता, स्वतंत्रता और न्याय देने के संकल्प के साथ ही देश के सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पंचशील के सिद्धान्तों एवं संयुक्त राष्ट्र के अनेकानेक मंचों पर विश्व के सारे देशों के बीच सद्भावना और सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों की प्रस्तावना के रूप में आता है।

अब प्रस्तुत मूल कर्तव्य का विवेचन करते हुए यह कथनीय है कि राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान राष्ट्र के संप्रतीक होते हैं। वे राष्ट्र की एकता, उसके गौरव की भावना, उसकी रक्षा और उन्नयन के संकल्प के प्रतीक होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में राष्ट्र की एकता और राष्ट्रीय गर्व की भावना उत्पन्न करने के लिए राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान आदि का आदर परम आवश्यक है। इन सभी को संविधान और विधि द्वारा बहुत गरिमा दी गई है और इन्हें पूर्ण सम्मान दिया जाना चाहिए।

इस संदर्भ में यह अपेक्षित है कि राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान के साथ ही राष्ट्र के अन्य संप्रतीकों के बारे में कुछ विवरण दिया जाए।

राष्ट्रध्वज

राष्ट्रध्वज का प्रारूप 22 जुलाई, 1947 को भारत की संविधान सभा ने अंगीकार किया। इसका प्रयोग और प्रदर्शन एक संहिता द्वारा विनियमित होता है।

तीन रंगों की आड़ी पट्टियों वाले हमारे राष्ट्र–ध्वज में सबसे ऊपर केसरिया (भगवा), बीच में सफेद और सबसे नीचे गहरी हरी पट्टी हैं । इन सभी की चौड़ाई समान है। ध्वज की चौड़ाई और लम्बाई के बीच दो और तीन का अनुपात है। सफेद पट्टी के बीच नीले रंग का चक्र है। इसका प्रारूप अशोक की सारनाथ की सिंह वाली लाट से लिया गया है। इसका व्यास सफेद पट्टी की चौड़ाई जितना है और इसमें 24 तीलियां हैं।

राष्ट्र ध्वज के रंगों एवं चक्र में अन्तर्विष्ट भावों आदर्शों का डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने संविधान सभा में कथन किया था जिसने सर्वसम्मति से राष्ट्र ध्वज को अंगीकृत किया था। डा0 राधाकृष्णन् ने कहा था कि **"भगवा अथवा केसरिया रंग त्याग अथवा निर्लिप्तता को व्यंजित करता है। हमारे नेताओं को भौतिक लाभ से विरक्त रहना चाहिए और अपने को काम के लिए समर्पित कर देना चाहिए।** केन्द्र में मध्य भाग प्रकाश है, हमारे आचरण का मार्ग दर्शन करने के लिए, सत्य का मार्ग। हरा भूमि से हमारा सम्बन्ध, यहाँ के वनस्पति जीवन से हमारा सम्बन्ध्, जिस पर अन्य सारे प्राणी आश्रित हैं, दर्शित करता है। **सफेद के केन्द्र में अशोक चक्र विधि अथवा धर्म का चक्र है।** जो इस ध्वज के नीचे कार्य कर रहे हैं सत्य, धर्म अथवा सद्गुण उनका नियंत्रक सिद्धांत होना चाहिए। पुनः चक्र गति को व्यंजित करता है। स्थिरता में मृत्यु है। गति में ही जीवन है। भारत को परिवर्तन का प्रतिरोध नहीं करना

चाहिए। इसे गतिमान रहना चाहिए और आगे जाना चाहिए। चक्र शांति पूर्वक परिवर्तन की गत्यात्मकता को बताता है।

राष्ट्रध्वज को रखने, प्रदर्शित करने, उसका उपयोग अथवा फहराने के संबंध में कतिपय अधिनियम और अनेक आदेश पारित किए गए हैं। अधिनियम चिह्न और नाम (अनुचित उपयोग निवारण) अधिनियम, 1950, राष्ट्र गौरव (अपमान निवारण) अधिनियम, 1971 है जिन पर इस अध्याय में आगे संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। सरकार द्वारा इस संबंध में पारित आदेशें को भारत की ध्वज संहिता 2002 में संकलित किया गया है।[1]

राष्ट्र ध्वज के प्रति पूर्ण सम्मान रखने के प्रति उच्चतम न्यायालय ने अभी हाल में एक निर्णय दिया है जिसमें कहा है कि राष्ट्र ध्वज फहराने का अधिकार निर्बाध नहीं है अपितु एक सप्रतिबंध अधिकार है। यह कहा गया है:[2]

ध्वज फहराने का अधिकार एक निर्बाध अधिकार नहीं है अपितु एक सप्रतिबन्ध अधिकार है। ऐसे अधिकार का भारत के संविधान के अनुच्छेद 51 क को ध्यान में रखाते हुए पढ़ा जाना चाहिए।

राज–चिह्न

राज–चिह्न अशोक के सारनाथ के सिंह–स्तंभ की अनुकृति है। मूल लाट में एक–दूसरे की ओर पीठ किए चार सिंह खड़े हैं। इनके नीचे घंटे के आकार के पद्म (कमल) के ऊपर एक चित्रवल्लरी में एक हाथी, एक दौड़ता हुआ घोड़ा, एक साण्ड और एक सिंह की मूर्तियां उभरी हुई हैं जिनके बीच–बीच में चक्र बने हुए हैं। बलुए पत्थर के एक ही खंड से उकेरे गए इस स्तंभ के शीर्ष पर "धर्मचक्र" अंकित है। दि0 26 जनवरी, 1950 को भारत सरकार द्वारा अंगीकृत राज–चिह्न में केवल तीन सिंह नजर आते हैं, चौथा नहीं दिखाई देता। आधार वाली पट्टी के मध्य में चक्र दिखता है, जिसके दांयी ओर साण्ड और बांयी ओर घोड़ा है। दायें और बायें कोनों पर अन्य चक्रों के किनारे हैं। घंटे के आकार का पद्म छोड़ दिया गया है। आधार वाली पट्टी के नीचे **मुण्डक उपनिषद् का सूत्र "सत्यमेव जयते" लिखा है, जिसका अर्थ है–सत्य की ही विजय होती है।**

राष्ट्रगान

जन–गण–मन गीत की रचना नोबेल पुरस्कार विजेता कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। संविधान सभा ने 24 जनवरी, 1950 को राष्ट्रगान को अंगीकृत किया। इस गीत को सर्वप्रथम 27 दिसंबर, 1911 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गाया गया था। पूरे गीत में पांच पद है। इनमें से पहला पद राष्ट्रगान का पूर्ण पाठ अन्तर्विष्ट करता है। यह इस प्रकार है–

जन–गण–मन अधिनायक जय हे
भारत– भाग्य विधाता
पंजाब–सिंधु–गुजरात–मराठा
द्राविड़–उत्कल–बंगा
विंध्य–हिमाचल–यमुना–गंगा
उच्छल– जलधि– तरंगा।
तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय गाथा।
जन–गण–मंगल–दायक,जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

राष्ट्र–गान को लगभग 52 सेकेंड में गाया जाना चाहिए। कुछ अवसरों पर इसका सक्षिप्त रूप (गायन समय करीब 20 सेकेंड) जिसमें पहली और अंतिम पंक्तियां ही हैं, भी गाया जाता है।

राष्ट्रगान को सम्मान पूर्वक गाया जाना चाहिए। राष्ट्रगान को गाने के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने एक निर्णय दिया है जिसमें कहा गया है।[1]

विधि का ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि जो किसी को राष्ट्रगान के लिए बाध्य करता है, न ही यह बात राष्ट्र के लिए असम्मानजनक है यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रगान के गाए जाने के समय सम्मानजनक रूप से खड़ा रहता है किन्तु गाने में सम्मिलित नहीं होता है। यह सच है कि अनुच्छेद 51क (क) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे। राष्ट्र गान के गाते समय खड़े रहने से राष्ट्र गान के प्रति समुचित सम्मान प्रदर्शित कर दिया जाता है। यह कहना ठीक नहीं होगा कि गाने में सम्मिलित न होने से असम्मान प्रदर्शित होता है।

यह विचारणीय है कि उक्त निर्णय समीचीन है अथवा नहीं, क्योंकि **राष्ट्रगान को गाना राष्ट्र धर्म है। यदि किसी पंथ या विश्वास में राष्ट्रगान गाने का वर्जन है तो वह राष्ट्र धर्म पर अध्यारोही नहीं हो सकता या उसे निष्प्रभावी नहीं कर सकता। राष्ट्र धर्म सभी धर्मों एंव पंथों से ऊपर है।** दूसरे राष्ट्रगान गाए जाने के समय कोई व्यक्ति सम्मान–जनक रूप से खड़ा है अथवा नहीं यह एक व्यक्तिनिष्ठ बात है। यह हो सकता है कि वह उपेक्षा–पूर्वक राष्ट्रगान नहीं गा रहा हो। सम्मान–जनक रूप से खड़ा होने का कोई वस्तुनिष्ठ मानदंड नहीं हो सकता। इसलिए राष्ट्रगान गाए जाने के समय सम्मान–जनक रूप से खड़ा होने की कोई कसौटी नहीं हो सकती।

राष्ट्रगीत

बंकिम चन्द्र चटर्जी का लिखा "वंदे मातरम्" गीत स्वतंत्रता–संग्राम के दौरान जन–जन का प्रेरणा–स्रोत रहा। यह उनके प्रसिद्ध उपन्यास आनंद मठ से लिया गया है। **इसे राष्ट्रगान जन–गण–मन जैसा ही सम्मान प्राप्त है।** किसी राजनीतिक अवसर पर इसे पहली बार 1896 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में गाया गया था। इसका पहला पद इस प्रकार हैः–

वंदे मातरम्।
सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्
शुभ्रज्योत्सनां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्

राष्ट्रीय पंचांग

राष्ट्रीय पंचांग शक संवत् पर आधारित है। इस संवत् में चैत्र, वर्ष का पहला महीना है और सामान्य वर्ष में 365 दिन होते हैं। इसे 22 मार्च, 1957 को ग्रेगोरियन पंचांग के साथ–साथ निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए अंगीकृत किया गयाः (i) भारत के राजपत्र (ii) आकाशवाणी के समाचार प्रसारण (iii) भारत सरकार द्वारा जारी पंचांग और (iv) सरकारी पत्र– व्यवहार के लिए

राष्ट्रीय पंचांग और ग्रेगोरियन पंचांग की तिथियों में स्थायी संबंध है। पहली चैत्र की तिथि सामान्यतः 22 मार्च को और लीप वर्ष में 21 मार्च को पड़ती है।

राष्ट्रीय पशु

भव्य रूप वाला बाघ (शेर), जिसका जीववैज्ञानिक नाम पेंथेरा टाइग्रिस (लिनियस) है, **भारत का राष्ट्रीय पशु है।** अपने रंगों की छटा, रूप और जबरदस्त शक्ति के लिए इसे वनपशुओं में विशेष गौरव प्राप्त है। मांसाहारी पशुओं में यह बड़ा भव्य और आकर्षक पशु है। इसकी दहाड़ इसकी शक्ति की प्रतीक जैसी है। **विश्व भर में बाघ की आठ प्रजातियां हैं। भारतीय बाघ की प्रजाति रॉयल बंगाल टाइगर है।** यह पूरे देश में तथा, नेपाल, भूटान और बंग्लादेश में भी पाया जाता है। भारत में बाघों की कम होती संख्या को देखते हुए एक अप्रैल, सन् 1973 से बाघ परियोजना शुरु की गई। इसके कुछ अच्छे परिणाम

मिले हैं और बाघों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। सन्1972 में देश में केवल 1,827 बाघ थे, जबकि अप्रैल 1986 में इनकी संख्या 4,230 होने का अनुमान है।

राष्ट्रीय पक्षी

भारतीय मयूर, जिसका जीव वैज्ञानिक नाम पावो क्रिस्टेटस (जिनियस) है, **भारत का राष्ट्रीय पक्षी है।** यह सबसे सुन्दर पक्षियों में से है। चमकदार नीली गरदन और वक्ष, पंखे के आकार की कलगी और लंबी भव्य पूंछ वाला इसका रूप देखते ही बनता है। नर मयूर द्वारा अपने सुन्दर पंख फैलाकर मयूरी के आगे प्रणय–नृत्य बड़ा मनोरम होता है।

प्राचीन काल से ही यह सुंदर पक्षी भारतीय साहित्य, लोकगाथाओं और कथाओं में प्रमुख स्थान पाता रहा है।

मयूर भारत के अनेक भागों, सिन्धु नदी के दक्षिण, मिज़ोरम तथा पूरे भारतीय प्रायद्वीप में मिलते हैं। भारतीय वन्य–जीवन (संरक्षण) अधिनियम,1972 के अन्तर्गत इसके पूर्ण संरक्षण की व्यवस्था है।

राष्ट्रीय पुष्प

कमल भारत का राष्ट्रीय पुष्प है। यह एक पवित्र पुष्प है और प्राचीन भारत की कला और पौराणिक कथाओं में इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त है और यह अनादि काल से भारतीय संस्कृति का शुभ प्रतीक रहा है।[1]

राष्ट्रीय वृक्ष

वटवृक्ष भारत का राष्ट्रीय वृक्ष है। यह विशाल वृक्ष अपने आसपास के सभी वृक्षों से ऊँचा होता है और इसकी जड़ें सारे अन्य वृक्षों की जड़ों से अधिक दूर तक जाने वाली होती हैं जो सरलता से कई एकड़ तक जाती हैं। इसकी अपनी जड़ों से शाखाएं निकलती हैं जिससे कि एक वृक्ष वस्तुतः शाखाओं, जड़ों और तनों का एक जकड़ाव होता है। वृटवृक्ष अपना पुनर्जनन करता रहता है और अविश्वसनीय काल तक बना रहता है। इस प्रकार यह माना जाता है कि यह अमर वृक्ष है।

इसका आकार और इसके घने पत्तों से निर्मित कुंज की छाया को विश्राम और चिन्तन का स्थान माना जाता है। यह सूर्य की ऊष्मा से त्राण देता है। यह आज भी स्थानीय पंचायतों और बैठकों को करने का केन्द्र स्थल और स्थान है। इस वृक्ष का सम्मान करने का भारत का लम्बा इतिहास है। राष्ट्र की प्राचीन कहानियों में इसका प्रमुख रूप से वर्णन है।

राष्ट्रीय फल

आम राष्ट्रीय फल है। भारत में यह अतीत काल से उगाया जाता रहा है। विभिन्न रंगों, आकारों एवं आकृतियों में भारत में इसकी 800 से अधिक किस्में हैं। विश्व के उष्ण प्रदेशीय भाग में आम अपने मधुर रस और चटकीले रंग के साथ स्वादमय होता है।

भारत के लोग पके आमों को खाते हैं और कच्चे आमों का अचार और चटनी बनाते हैं। आम विटामिन ए, सी और डी से भरपूर होता है।[2]

राष्ट्र ध्वज, संप्रतीक और देश के विशिष्ट महापुरुषों एवं संस्थाओं के नाम का वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए उपयोग अनुचित है। ऐसे अनुचित उपयोंगों को रोकने के लिए संप्रतीक और नाम (अनुचित प्रयोग निवारण) अधिनियम, 1950 पारित किया गया है। इसके उद्देश्यों और कारणों के कथन में अन्य बातों के साथ कहा गया है :–

उद्देश्यों और कारणों का कथन

भारत (और विदेश) में वाणिज्यिक और व्यापार संबंधी प्रयोजनों के लिए तथा ऐसी रीति में जिसमें जनता की भावनाओं को ठेस पहुँचना सम्भाव्य है, भारतीय राष्ट्र ध्वज तथा संप्रतीक और महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं के नाम और चित्र प्रतिरूपण के प्रयोग के मामले प्रकाश में आए हैं। भारतीय व्यापार चिह्न अधिनियम, 1940, भारतीय पेटेन्ट और डिजाइन अधिनियम, 1911, भारतीय पण्य–वस्तु चिह्न अधिनियम, 1889 और भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के उपबंध इन दुरुपयोगों के निवारण के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

विधेयक, वृत्ति, पेटेन्ट या डिजाइन के प्रयोजनों के लिए इन नामों, संप्रतीकों आदि के अनुचित उपयोग का निवारण करने के लिए और अनुसूची में विनिर्दिष्ट संप्रतीकों, आदि के दुरुपयोग के लिए शास्ति अधिरोपित करने के लिए है तथा जब आवश्यक हो, अनुसूची में जोड़ने और संशाोधन करने के लिए केन्द्रीय सरकार को सशक्त करता है।''

अधिनियम में निम्नलिखित मुख्य प्रावधान हैं

धारा 3. कतिपय संप्रतीकों और नामों के अनुचित प्रयोग का प्रतिषेध – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति किसी व्यापार कारोबार, आजीविका या वृत्ति के प्रयोजनार्थ या किसी पेटेन्ट के नाम में या किसी व्यापार – चिह्न या डिजाइन में किसी ऐसे नाम या संप्रतीक का जो अनुसूची में विनिर्दिष्ट है, उसकी किसी मिलती–जुलती नकल का, केन्द्रीय सरकार की या सरकार के किसी ऐसे अधिकारी की, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया जाए, पूर्व अनुमति के बिना प्रयोग, ऐसे मामलों और ऐसी शर्तों के सिवाए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाए, नहीं करेगा और न करना जारी रखेगा।

धारा 5. शास्ति – कोई व्यक्ति, जो धारा 3 के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा, जुर्माने से, जो पांच सौ रुपये तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा।

अनुसूची में उल्लिखित मुख्य राष्ट्रीय संप्रतीक और नाम निम्नलिखित हैं।

1. भारतीय राष्ट्र ध्वज

2. भारत सरकार या किसी राज्य सरकार का नाम, संप्रतीक या शासकीय मुद्रा, या ऐसी सरकार या ऐसी किसी सरकार के किसी विभाग द्वारा प्रयुक्त कोई अन्य राजचिह्न या कोर्ट ऑफ आर्म्स।

3. राष्ट्रपति, राज्यपाल (सदरे रियासत) या भारत के गणतंत्र या संघ का नाम, संप्रतीक या शासकीय मुद्रा।

4. ऐसा कोई नाम जिससे निम्नलिखित व्यंजित हो या इसका व्यंजित होना प्रकल्पित हो।

(क) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार का संरक्षण अथवा

(ख) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन गठित किसी स्थानीय प्राधिकरण या किसी निगम या निकाय से कोई संबंध।

5. राष्ट्रपति – राष्ट्रपति भवन, राजभवन का नाम या चित्र प्रतिरूपण

6. महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, छत्रपति शिवाजी महाराज या भारत के प्रधान मंत्री का नाम या चित्र – प्रतिरूपण, या "गांधी", "नेहरू" या "शिवाजी" शब्द के सिवाए ऐसे कलेन्डरों पर उनके चित्रों के प्रयोग के जहाँ कलेन्डरों के विनिर्माताओं तथा मुद्रकों का केवल नाम दिया जाता है और उन कलेन्डरों का प्रयोग माल का विज्ञापन करने के लिए न हो)

7. सरकार द्वारा समय – समय पर संस्थित मेडल, बैज या अलंकरण अथवा ऐसे मैडल, बैज या अलंकरण के लघु – रूप या प्रतिरूप (या ऐसे मेडल, बैज या अलंकरण के या उसके लघु – रूप या प्रतिरूप के नाम)

8. ''अशोक चक्र'' या ''धर्म चक्र'' नाम या अशोक चक्र का वह चित्र प्रतिरूपण, जिसका प्रयोग भारतीय राष्ट्रध्वज में या भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या ऐसी किसी सरकार के किसी विभाग की शासकीय मुद्रा या संप्रतीक में किया जाता है।

9. संसद् या किसी राज्य के विधान मण्डल या उच्चतम न्यायालय, या किसी राज्य के उच्च न्यायालय, या केन्द्रीय सचिवालय, या किसी राज्य सरकार के सचिवालय, या किसी अन्य सरकारी कार्यालय का नाम, या पूर्वोक्त संस्थाओं में से किसी के द्वारा अधिभोग में लाए जाने वाले भवन का चित्र – प्रतिरूपण।

राष्ट्र के गौरव की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। राष्ट्र का गौरव राष्ट्र की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत के संरक्षण में निहित है। वस्तुतः देश में कतिपय तत्त्वों द्वारा ऐसे कार्य होने लगे थे जो राष्ट्र के गौरव के लिए अपमानकारी थे। उनके नियंत्रण के लिए राष्ट्र गौरव अपमान – निवारण अधिनियम, 1971 पारित किया गया है। इस अधिनियम में निम्नलिखित उपबंध किया गया है :

भारतीय राष्ट्रीय ध्वज और भारत के संविधान का अपमान

2. जो कोई किसी सार्वजनिक स्थान में या जनता को दृष्टिगोचर किसी अन्य स्थानों में भारतीय राष्ट्रीय ध्वज को अथवा भारत के संविधान या उसके किसी भाग को जलाएगा, विकृत करेगा, विरूपित करेगा, अपवित्र करेगा, विद्रूप करेगा, नष्ट करेगा, या रौंदेगा या (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा) उसका अन्यथा अपमान करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किए जाएगा।

स्पष्टीकरण 1 – विधिपूर्ण साधनों से भारत के संविधान में संशोधन या भारतीय राष्ट्रीय ध्वज में परिवर्तन कराने की दृष्टि से संविधान या भारतीय राष्ट्रीय ध्वज का या सरकार के किन्हीं अध्युपायों का अनुमोदन व्यक्त करने वाली टीका–टिप्पणी या आलोचना करना इस धारा के अधीन अपराध नहीं है।

स्पष्टीकरण 2 – ''भारतीय राष्ट्रीय ध्वज'' पद के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय ध्वज का या उसके किसी भाग या किन्हीं भागों का किसी पदार्थ का बना हुआ या किसी पदार्थ पर रूपितचित्र, रंगचित्र या फोटो – चित्र है या अन्य दृश्य रूपण भी है।

स्पष्टीकरण 3 – ''सार्वजनिक स्थान'' से जनता के उपयोग के लिए आशयित या उसकी पहुँच का कोई स्थान अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत कोई लोक परिवहन भी है।

भारतीय राष्ट्रगान के गायन को रोकना आदि

3. जो कोई भी भारतीय राष्ट्रगान के गायन को साशय रोकेगा या ऐसे गायन में लगे हुए किसी जनसमूह के लिए विघ्न पैदा करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा।

राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को कायम रखना और उसे दृढ़ बनाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। इसके विपरीत कार्य करना विधि विरुद्ध है। ऐसे क्रियाकलापों को रोकने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 पारित किया गया है।

उक्त अधिनियम के विधेयक के उद्देश्य और कारणों के कथन में कहा गया है :

1. भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय अखंडता कौंसिल द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय अखण्डता और क्षेत्रीयता पर नियुक्त कमेटी की र्निविरोध सिफारिशों की स्वीकृति के अनुसरण में संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 पारित किया गया जिसने संसद को इसके लिए अधिक सशक्त बनाया कि वह भारत की सम्प्रभुता और अखंडता के हित में निम्नलिखित पर विधि द्वारा युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित कर सके।

(1) वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

(2) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार

(3) संगम या संघ बनाने का अधिकार

2 .इस विधेयक का यह उद्देश्य है कि भारत की अखंडता और सम्प्रभुता के विरुद्ध निर्देशित क्रियाकलापों से निपटने के लिए शक्ति उपलब्ध कराई जाए।

उक्त अधिनियम की धारा 2(च) में "विधि विरुद्ध क्रिया" को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है।

"विधिविरुद्ध क्रिया" से किसी व्यक्ति या संगम के संबंध में, ऐसे व्यक्ति या संगम द्वारा (चाहे कोई कार्य करके, या बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा, या दृश्यरूपण द्वारा या अन्यथा) की गई कोई ऐसी कार्रवाई अभिप्रेत है–

(i) जो किसी भी आधार पर चाहे वह कुछ भी हो, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का अध्यर्पण या भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग का संघ से अलग हो जाना घटित करने के लिए आशयित है, या उसके लिए किसी दावे का समर्थन करती है, या जो ऐसा अध्यर्पण या अलग हो जाना घटित करने के लिए किसी दावे का समर्थन करती है, या जो ऐसा अध्यर्पण या विलग हो जाना घटित करने के लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को उद्दीप्त करती है।

(ii) जिससे भारत की प्रभुता और प्रादेशिक अखण्ड़ता का अन्–अंगीकरण होता है या उन पर आक्षेप होता है या जो उन्हें विच्छिन्न करती है या विच्छिन करने के लिए आशयित है।

"विधिविरुद्ध संगम" को धारा 2 (छ) में निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है।

"विधिविरुद्ध संगम" से कोई ऐसा संगम अभिप्रेत है–

(i) जिसका उद्देश्य कोई विधिविरुद्ध क्रिया है या जो कोई विधिविरुद्ध क्रिया के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित करता है या उनकी सहायता करता है अथवा जिसके सदस्य ऐसी क्रिया करते हैं, अथवा

(ii) जिसका उद्देश्य भारतीय दंड संहिता की धारा 153क या धारा 153ख के अधीन दण्डनीय कोई कार्य है या जो कोई ऐसा कार्य करने के लिए व्यक्तियों को प्रोत्साहित करता है या उनकी सहायता करता है अथवा जिसके सदस्य कोई ऐसा कार्य करते हैं।

यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि कोई संगम विधिविरुद्ध है या हो गया है तो वह ऐसे संगम को शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विधिविरुद्ध घोषित कर सकती है। पुनः केन्द्रीय सरकार को किसी विरुद्ध संगम की निधियों के उपयोग का प्रतिषेध करने की शक्ति है। केन्द्रीय सरकार को विधिविरुद्ध संगम के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए गए स्थलों को अधिसूचित करने की शक्ति है। उपर्युक्त अधिसूचनाओं में मनमानापन या अयुक्तियुक्तता न हो इसके लिए अधिनियम न्यायिक कल्प जाँचों का भी प्रावधान करता है।

अधिनियम में विधि–विरुद्ध संगम के सदस्य होने के लिए विधिविरुद्ध संगम की विधियों से बरतने के लिए, अधिसूचित स्थान के संबंध में किए गए किसी आदेश के उल्लंघन के लिए, विधिविरुद्ध क्रिया कलापों के लिए शास्तियों एवं दण्ड का भी प्रावधान किया गया है। जो निम्नलिखित हैः

अपराध और शास्तियाँ

धारा 10 – जो कोई, धारा 3 के अधीन निकाली गई ऐसी अधिसूचना द्वारा जो उस धारा की उपधारा (3) के अधीन प्रभावी हो गई हो, विधिविरुद्ध घोषित किए गए किसी संगम का सदस्य होगा और बना रहेगा, या ऐसे किसी विधिविरुद्ध संगम के अधिवेशनों में भाग लेगा, या किसी विधिविरुद्ध संगम को अभिदाय करेगा, या उसके प्रयोजन के लिए कोई अभिदाय प्राप्त करेगा या उसकी याचना करेगा, या ऐसे किसी विधिविरुद्ध संगम की क्रियाओं में किसी भी प्रकार की सहायता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

धारा 11 – यदि कोई व्यक्ति, जिस पर धारा 7 उपधारा (1) के अधीन किन्हीं धनों, प्रतिभूतियों, या पावनों के सम्बन्ध में किसी प्रतिषेधात्मक आदेश की तामील की जा चुकी है, उस प्रतिषेधात्मक आदेश के उल्लंघन में उन्हें संदत्त, परिदत्त, या अन्तरित करेगा या उनसे किसी भी रीति से अन्यथा बरतेगा तो वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डनीय होगा, और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (अब दंड प्रक्रिया संहिता 1973) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी ऐसे उल्लंघन का विचारण करने वाला न्यायालय, दोषसिद्ध व्यक्ति से उन धनों या पावनों की रकमें या उन प्रतिभूतियों का बाजार–मूल्य, जिन के सम्बंध में प्रतिषेधात्मक आदेश का उल्लंघन किया गया है। या उनका ऐसा भाग, जैसा न्यायालय ठीक समझे, वसूल करने के लिए उस पर अतिरिक्त जुर्माना भी अधिरोपित कर सकेगा।

धारा 12 (1) – जो कोई किसी वस्तु का उपयोग धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन उसके सम्बंध में किए गए किसी प्रतिषेधात्मक आदेश के उल्लंघन में करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

(2) जो कोई धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन किए गए किसी आदेश के उल्लघंन में जानते हुए और जानबूझकर किसी अधिसूचित स्थान में होगा, या उसमें प्रविष्ट होगा या प्रविष्ट होने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा, और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

धारा 13. (1) जो कोई –

(क) किसी विधिविरुद्ध क्रिया में भाग लेगा, या ऐसी क्रिया करेगा, अथवा

(ख) किसी विधिविरुद्ध क्रिया के किए जाने का पक्षसमर्थन करेगा, उसका दुष्प्रेरण करेगा, उसकी सलाह देगा या उसके किए जाने को उद्दीप्त करेगा,

वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

(2) जो कोई धारा 3 के अधीन विधिविरुद्ध घोषित किए गए किसी संगम की किसी विधिविरुद्ध क्रिया में उस धारा की उपधारा (3) के अधीन उस अधिसूचना के प्रभावी हो जाने के पश्चात् जिसके द्वारा वह इस प्रकार घोषित किया गया हो, किसी भी प्रकार सहायता करेगा, वह कारवास से, जिसकी अवधि 5 वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डनीय होगा।

(3) इस धारा में की कोई बात भारत सरकार और किसी अन्य देश की सरकार के बीच हुई किसी संधि करार या अभिसमय को, या भारत द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उसके लिए की जाने वाली किसी बातचीत को लागू नहीं होगी।

जिस प्रकार राष्ट्रध्वज और भारत के संविधान के अपमान को राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम 1971 के अधीन और राष्ट्र ध्वज तथा राज चिह्न इत्यादि का अनुचित उपयोग करने वाले को चिह्न और नाम (अनुचित उपयोग निवारण) अधिनियम, 1950 के अधीन दंडित किया जा सकता है उसी प्रकार अन्य मूल कर्तव्यों का पालन न करने के लिए भी अधिनियम बनाए जा सकते हैं और कर्तव्यों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दंडित किया जा सकता है। वस्तुतः मूल कर्तव्य संविधान की उद्देशिका में लिखित लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हैं। ये व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास, लोकतंत्र के संरक्षण, राष्ट्रीयता की भावना की वृद्धि और देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने और उसे दृढ़ बनाने के लिए कल्पित हैं और वे परम्परागत भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों की अनुरूपता में हैं। इसलिए तालिका रूप में उनका पठन करना आवश्यक है। अतएव प्रत्येक भारतीय नागरिक को उनका पालन करना चाहिए।

सुखस्य मूलं धर्मः ।। 1।।

धर्म (नीति या मानवोचित कर्तव्य का पालन सुख का मूल है।)

विवरण– जगत् (समाज) का धारण या पालन करने वाली नीतिमत्ता या कर्तव्य पालन ही मनुष्य का धर्म है। धर्म (नीति) ने ही समस्त जगत् को धारण कर रखा है। नहीं तो वह कभी का लड–झगड कर नष्ट हो गया होता। **अधर्म आपात दृष्टि से सुख का मूल दीखने पर भी दुःख मूल है**। धर्म पालन से दुःखदायी पाप की संभावानाएं नष्ट हो जाती हैं। मानसिक अभ्युत्थान और ऐहिक अभ्युदय दोनों को समान रूप साथ–साथ सिद्ध करने वाली नीति "धर्म" कहाती है। इस लिये जो लोग राज्याधिकार लेना और उससे सुख अर्थात् दोनों प्रकार का अभ्युदय पाना चाहें वे सावधान हो जाएं और उससे भी पहले धर्म (नीतिमत्ता) को अपनाएं। नीति का अनुसरण किये बिना मनुष्य को मानसिक अभ्युत्थानमूलक सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता। मानसिक अभ्युत्थानमूलक सुख ही सुख है। मानसिक पतन से मिलने वाला सुख सुख न होकर सुखभ्रम या अनन्त दुःख जाल ही है।

पुस्तकान्तर में इससे प्रथम यह स्वतंत्र सूत्र उपलब्ध है।

सा श्रीर्वोऽव्यात्।।

वह परम सम्पत्ति दात्री ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवता राज्य श्री आप राज्याधिकारियों को सुमति देकर रक्षा करे।

चाणक्य सूत्राणि

अध्याय – 7

स्वतंत्रता संघर्ष के प्रेरक आदर्श

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (ख) में निम्नलिखित रूप में कथित है:

"हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष को प्रेरित करने वाले महान् आदर्शों को संजोए रखना और उन्हें अपने जीवन में अपनाना।"

यह बहुत ही समीचीन और आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष को प्रेरित करने वाले महान् आदर्शों को संजोए रखा जाए और उनकी केवल वाचिक प्रशंसा न करके उन्हे जीवन में अपनाया जाए। जिन आदर्शों की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रता का दीर्घकालीन संघर्ष चला, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उन्हें चरितार्थ किया जाना आवश्यक है। वे कौन से आदर्श थे जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित किया, इसके बारे में संशोधन विधेयक पर संसद् में बहस में विधि मंत्री श्री एच0 आर0 गोखले ने स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया। उनके द्वारा बताए गए आदर्शों पर प्रकाश डालने के लिए उनके भाषण के सुसंगत अंश को उद्धृत करना आवश्यक है।

विधि मंत्री श्री एच0 आर0 गोखले ने विधेयक के उक्त खंड के बारे में (लोक सभा में) अपने समापन भाषण में कहा:

"उदाहरण के लिए यह कहा गया था कि हम इन कर्तव्यों की बात.....के लिए कर रहे थे। यह कहा गया था कि उस संघर्ष के दौरान कुछ ऐसे वर्ग थे जो हिंसापूर्ण थे। वे हिंसा में विश्वास करते थे अथवा वे ऐसे कार्यकलापों में विश्वास करते थे जो स्वतंत्रता के लिए आम संघर्ष का भाग नहीं माने जाते थे। वह जो कुछ भी हो। मैं ऐसा नहीं सोचता कि किसी व्यक्ति के मन में इस बारे में कोई संदेह हो सकता है कि वे उत्तम आदर्श क्या थे जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी। वे उत्तम आदर्श, जिसने स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी, के बारे में किसी के मन में कोई संदेह नहीं हो सकता। वह उत्तम आदर्श जिसने स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी निःसंदेह रूप से यह था कि पहला हम विदेशी आधिपत्य की बेड़ियों से अपने को मुक्त कराएं, विदेशी साम्राज्यवाद से छुटकारा पाएं, यह निश्चित हो कि सबसे पहले हम राजनीतिक रूप में स्वतंत्र हैं। किन्तु हमारे आदर्श वहाँ ही समाप्त नहीं हो गए जैसाकि हमने पहले कहा।

उन आदर्शों में हमारे लोगों का आर्थिक और सामाजिक उद्धार जैसी बातें थीं जो ऐसे कार्यक्रमों को लागू करने के माध्यम से लया जाए जो एक क्रांति उपस्थित कर सकें। यह अनेक बार कहा गया है। किन्तु मैं इसे दुबारा कहने की बात को रोक नहीं सकता। ये सब हमारे स्वतंत्रता संघर्ष के अंग थे। हमारे नेता, हमारे लोगों ने ऐसा नहीं सोचा कि अंग्रेजों के जाते ही हमारे आदर्श प्राप्त कर लिए जाएंगे। यह अधिक विस्तृत आदर्शों के लिए था जिसके लिए स्वतंत्रता संघर्ष हुआ था। यह इस प्रकार है कि संघर्ष हुआ इसका यह तात्पर्य नहीं कि आदर्श भिन्न थे। वे आदर्श थे, राजनीतिक आधिपत्य से स्वतंत्रता, वे आदर्श थे इस देश कि लिए ऐसी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को प्राप्त करना जो वस्तुतः लोगों के सभी प्रकार से उत्थान की दृष्टि से वस्तुतः उनका उद्धार माना जाए। इसलिए मैं ऐसा नहीं सोचता कि यह किसी विवाद का विषय हो सकता है।"[1]

उक्त आदर्शों के बारे में थोड़ा विस्तार से बताते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरित करने वाले कुछ उच्च आदर्श निम्नलिखित थे:

(1) राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना जिससे कि भारत का शासन यहाँ के लोगों के हाथ में हो और वे ऐसे समाज की स्थापना करें जहाँ मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण नहीं होगा। गरीबी, बीमारी और निरक्षरता नहीं रहेगी।

(2) ये उद्देश्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब सारे नागरिकों को अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का अवसर होगा।

(3) व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए मनुष्य का निर्माण करने वाली शिक्षा उपलब्ध् कराई जाए

(4) ऐसी शिक्षा तभी दी जा सकती है जब कथन के साथ आचरण भी हो।

(5) देश को अपने से ऊपर रखा जाए।

यह ज्ञातव्य है कि स्वतंत्रता संघर्ष लम्बे समय तक चला और उसमें हजारों लोगों ने अपने जीवन का बलिदान कर दिया। इसलिए हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि अपने पूर्वजों द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए किए गए बलिदान को स्मरण रखें। उसके साथ ही उन आदर्शों को स्मरण रखा जाए उनको हृदयंगम किया जाए और उनका अनुसरण किया जाए। यह केवल देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए ही संघर्ष नहीं था अपितु यह समूचे विश्व के लोगों के समाजिक और आर्थिक उद्धार के लिए था। इसके आदर्श थे एक उचित समाज का निर्माण जिसमें स्वतंत्रता, समता, अहिंसा, भ्रातृभावना और विश्वशांति हो। यदि भारत के नागरिक इन आदर्शों के प्रति जागरूक और प्रतिबद्ध रहें तो हम देश में उभरती हुई विभाजनकारी प्रवृत्तियों से ऊपर उठ सकते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत खंड अर्थात खंड (ख) में परिकल्पित आदर्श संविधान के भी आदर्श हैं जिन्हें संविधान के प्रस्तुत अनुच्छेद के अन्य खंडों में अधिकथित किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि उन तत्त्वों पर भी ध्यान रखा जाए जिन्होंने लोगों के विदेशी शासन के विरुद्ध एकजुट होकर खड़े हो जाने को प्रेरित किया। यह तत्कालीन चिन्तन और साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। सन् 1857 से 1947 तक के हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना की प्रधानता रही जो देश के अतीत के गौरव और आत्म गौरव से प्रेरित थी । इस काल के प्रमुख कवि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, आयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" रामधारी सिंह 'दिनकर', पं0 सोहनलाल द्विवेदी इसी भावना से प्रेरित थे। राजनीति के क्षेत्र में लाल, पाल, बाल, महात्मा गांधी, पं मदन मोहन मालवीय, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले और अन्य ने और धर्म के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द ने उस आत्म गौरव की भावना को ध्वनित किया। इस प्रकार संक्षेप में राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में देश के आत्म–गौरव की भावना महत्त्वपूर्ण तत्त्व थी और आज के परिप्रेक्ष्य में भी उसे एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होना चाहिए।

इस प्रकार इस कर्तव्य में यह भी अन्तर्निहित है कि हम राष्ट्र के अतीत गौरव को जानें और आत्म गौरव की भावना रखें और उक्त गौरव के आधारभूत आचरण का अनुसरण करें।

अध्याय – 8

देश की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा

उक्त कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51 क (ग) में निम्नलिखित रूप में कथित हैं:

"भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे"

भारत में आदि काल से देश की प्रभुता या स्वतंत्रता की रक्षा करना प्रत्येक देशवासी का पुनीत दायित्व माना गया है।

ऋग्वेद का कथन

यतेमहि स्वराज्ये (ऋ0 5.66.6)

(हम स्वराज्य के लिए सदा प्रयत्न करें)।

स्वतंत्रता पूर्व का भारत का इतिहास देश की प्रभुता की रक्षा करने या देश की प्रभुता प्राप्त करने का इतिहास है। सिकन्दर के समय से यह देश प्रभुता की रक्षा के लिए लड़ता रहा है। हम जब इसमें विफल रहे तब भी प्रभुता प्राप्त करने का संकल्प देश ने नहीं छोड़ा। मुगल काल में भी इसके लिए देश के अनेक भागों में युद्ध चलता रहा और अन्ततः यही मुगल शासन के पतन का कारण बना। अंग्रेजों का शासन यहाँ स्थापित हो जाने पर प्रभुता प्राप्त करने का यह युद्ध स्वतंत्रता संघर्ष के रूप में चलता रहा, अहिंसात्मक और हिंसात्मक दोनों रूपों में। इसका अपना एक इतिहास है और इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। यह स्वतंत्रता संघर्ष विश्व में अपने रूप का अभूतपूर्व था। इसमें सारा राष्ट्र स्वतंत्रता या प्रभुता की प्राप्ति के लिए एकजुट होकर खड़ा हो गया था। इसका मुख्य कारण था–देश के अतीत और आत्म गौरव की भावना। इसका इस देश की आत्मा में निवास है और देश की प्रभुता को कायम रखने और उसकी रक्षा का यह सबसे बड़ा संबल है।

भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करना भारत के सारे नागरिकों का सर्वोपरि कर्तव्य है। यह उल्लेखनीय है कि लोकतांत्रिक प्रणाली में, जैसी कि हमारे देश में है, प्रभुता लोगों में निहित होती है, इसलिए उस प्रभुता की रक्षा करना हमारा अपना दायित्व है। यदि देश की स्वतंत्रता और एकता पर संकट आता है तो राष्ट्र समाप्त हो सकता है और राष्ट्र के समाप्त होने पर हमारे सारे आदर्श, उपलब्धियाँ और आकांक्षाएं और भविष्य निर्माण की योजनाएं समाप्त हो जाएंगी।

देश की प्रभुता की रक्षा से ही नागरिकों का नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नयन हो सकता है। कहा गया है **"शस्त्रे रक्षिते राज्ये शास्त्रोपि सम्वर्द्धते"** (शस्त्र से राज्य की रक्षा करने पर ही शास्त्र का संवर्द्धन होता है।)

वस्तुतः देश की प्रभुता और एकता तथा अखंडता के कायम रहने से ही अति यत्न से प्राप्त की गई स्वतंत्रता और साथ ही सामाजिक आर्थिक उत्थान का लक्ष्य, जो संविधान का आदर्श है, रक्षित हो सकता है।

देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने और इसकी रक्षा करने का समादेश संविधान की उद्देशिका में भी अन्तर्विष्ट है। यह कहा गया है कि नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर––– संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस प्रकार नागरिकों द्वारा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने का कार्य संविधान का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य और आदर्श है।

पुनः संविधान के मूल अधिकारों वाले भाग (भाग 111) के अनुच्छेद 19 का खंड (1) (क) वाक् स्वातं=य का अधिकार देता है उस पर निर्बंधन लगाते हुए खंड (2) में यह कहा गया है कि उपखंड (1)

(क) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता के हित में युक्तियुक्त निर्बंधन लगाने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

यह प्रतीत होता है कि यह मूल कर्तव्य विशेषतः देश के प्रतिरक्षा बलों और कानून और व्यवस्था कायम रखने के उत्तरदायी अभिकरणों के लिए हैं[1]। तथापि यह उल्लेखनीय है कि देश की रक्षा केवल सैनिकों से नहीं होती है उनके पीछे सारे राष्ट्र की शक्ति और सहयोग होना चाहिए। इस रूप में यह सारे नागरिकों का कर्तव्य है।

यह भी द्रष्टव्य है कि भारतीय दंड संहिता का समूचा अध्याय –VI जो राज्य के विरुद्ध अपराधों के संबंध में हैं, भारत की एकता और अखंडता की रक्षा के लिए सुसंगत है।

यह कथनीय है कि यदि स्वतंत्रता का निवास लोगों के मस्तिष्क में होता है तो एकता के बारे में भी वही बात है। ऐसा कोई आचरण जो एकता को नष्ट करने या हानि पहुँचाने को उन्मुख होता है वह दंड संहिता की धारा 153 क के अधीन दंडनीय है। वे आरोप और कथन जो राष्ट्रीय अखंडता के विरुद्ध हैं, वे दंड संहिता की धारा 153 ख के अधीन दंडनीय हैं। वे कथन अथवा रिपोर्टें जो डरावने समाचार धारण करती हैं जो शत्रुता आदि को बढ़ाने को अग्रसर होते हैं, वे दंड संहिता की धारा 505 (2) में दंडनीय हैं।

इस प्रकार यह मूल कर्तव्य नागरिकों का एक आधारभूत कर्तव्य है जिसके पालन में देश की स्वतंत्रता और उसके चतुर्दिक उन्नयन की बात अन्तर्निहित है।

(राज्य का मूल)

राज्यमूलमिन्द्रियजयः।। 4।।

अपनी इन्द्रियों पर अपना आधिपत्य प्रतिष्ठित रखना राज्य का (राज्य में राज्यश्री आने और उसके चिरकाल तक ठहरने का सबसे मुख्य कारण है।)

विवरण– राज्याधिकारियों की स्वेच्छाचारिता, विषयलोलुपता और स्वार्थपरायणता राज्य के लिये हालाहल का काम करती है। जब भोगलोलुप राज्याधिकारी राजशक्ति के दबाव से अपनी व्यक्तिगत भोगेच्छा पूरी करने के लिये प्रजा से धन ऐंठनेवाले बन जाते हैं, तब वह राज्य–संस्था प्रजा के अनुमोदन से वंचित होकर नष्ट हो जाती है। राज्य–संस्था को प्रजा का हार्दिक अनुमोदन मिलते रहने के लिये राज्याधिकारिता पर पूरा अंकुश रखें तब ही किसी राज्य का राज्यैश्वर्य सुरक्षित रह सकता है। राष्ट्र में राज्यश्री को सुरक्षित रखने के लिए राज्य के प्रत्येक कर्मचारी का इन्द्रिय विजयी सन्त महात्मा होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इतिहास साक्षी है कि जब जब राज्याधिकारियों की स्वेच्छाचारिता नहीं रोकी गई, तब तब राजाओं के ऐश्वर्य प्रकुपित प्रजा के द्वारा अनेक बार धूल में मिलाए जा चुके हैं। जबतक राज्याधिकारी लोग अपनी इन्द्रियों को संयत रखना अपना पवित्र कर्तव्य नहीं मान लेते, तब तक वे राज्यसंस्था को कभी सुरक्षित नहीं रख सकते। इन्द्रियों पर विजय न पाने वाले राज्याधिकारी लोग जनता को राज्य का शत्रु बना लेते हैं। अवशेन्द्रिय राजकर्मचारियों की भूलें, स्नान करके अपने ही ऊपर धूल फेंकने वाले हाथी समान राज्यसंस्था की मलीमस बना देने वाली होती है। विषय–लोभी राजकर्मचारियों की भूलें अपनी राज्यसंस्था को अपयश दिलानेवाली, उसे अश्रद्धेय तथा घृणास्पद बना डालने वाली होती हैं।

पाठान्तर–राज्यस्य मूलमिन्द्रियजयः

अध्याय – 9

देश की रक्षा का कर्तव्य

उक्त मूल कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क खंड (घ) में निम्नलिखित रूप में कथित हैः

"देश की रक्षा करना और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करनाः"

इस खंड में निम्नलिखित संशोधन संसद् में प्रस्तुत किया गया था जो इस कर्तव्य को और अधिक व्यापक और मर्मपूर्ण बनाने को अभिप्रेत थाः

"दूसरा जो संशोधन मैंने रखा है वह यह है कि जहाँ आप ने यह रखा है कि "देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे," यहाँ मेरा यह कहना है कि सेवा तो सब करते हैं, सेवा छोड़िए, कहिए कि त्याग और बलिदान करे। सेवा के नाम पर सेवा लूटने की पद्धति छोड़िए। सेवा के लिए हर कोई तैयार हो जाता है। हम यह चाहेंगे कि देश के सामने जब कोई प्रश्न चिह्न अंकित हो, देश के सामने कोई मर्यादा का सवाल उपस्थित हो, गौरव का सवाल उपस्थित हो तो हर नागरिक त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार रहे। यह बहुत आवश्यक है[1]।

तथापि यह खंड अंततः उसी रूप में पारित हुआ जिस रूप में वह सम्प्रति है। यह कर्तव्य कुछ सीमा तक उक्त अनुच्छेद के खंड (ग) में अधिकथित कर्तव्य से मिलता जुलता है।

खंड (ग) के अधीन कर्तव्य भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा और उसे अक्षुण्ण रखने के लिए है जबकि यह कर्तव्य देश की रक्षा करने और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करने का है। उक्त दोनों कर्तव्यों की शब्दावली से स्पष्ट होता है कि खंड (ग) के अधीन कर्तव्य मुख्यतया प्रतिरक्षा बलों एवं कानून और व्यवस्था कायम रखने के अभिकरणों के लिए अभिप्रेत है जबकि इस खंड के अधीन कर्तव्य सामान्य नागरिकों के लिए भी है। वस्तुतः इस कर्तव्य का क्षेत्र खंड (ग) के अधीन कर्तव्य से व्यापक है। इस कर्तव्य के दो भाग हैं: (1) देश की रक्षा करने का और (2) आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करने का।

जहाँ तक इसके पहले भाग का प्रश्न है यह निवेदन है कि किसी भी राज्य में पहली आवश्यकता उसकी रक्षा की है। आधुनिक राज्यों में यह एक मान्य सिद्धान्त है कि राज्य का प्रत्येक नागरिक युद्ध या बाहरी आक्रमण के विरुद्ध देश की रक्षा करने को आबद्ध है। आधुनिक युद्ध केवल युद्ध के मैदान में ही नहीं लड़े जाते, न ही वे केवल सशस्त्र सैन्य बलों द्वारा ही जीते जाते हैं। देश के सारे नागरिक विभिन्न रीतियों से उसमें महत्त्वपूर्ण रूप से भाग लेते हैं। देश के विरुद्ध किसी भी युद्ध में वह देश के खेत–खलिहानों तथा उद्योग धंधों तथा अन्य क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने और शांति तथा कानून व्यवस्था बनाए रखने के द्वारा उतनी ही गंभीरता में लडा जाता है जैसा युद्ध के मैदान में। यह न केवल देश को युद्ध के लिए आर्थिक और नैतिक रूप से समर्थ बनाता है अपितु प्रतिरक्षा बलों का मनोबल बढ़ाता है। अतएव सामान्य नागरिक की भूमिका में प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह जो भी कार्य कर रहा है वह पूरी तत्परता और उत्कृष्टता के साथ तथा युद्ध संचालन के लिए अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए उसे तन मन धन से करे।

यह ज्ञातव्य है कि **देश की रक्षा से तात्पर्य केवल सैन्य बल से उसकी सीमाओं की रक्षा करना मात्र ही नहीं है अपितु यह देश के मूल्यों, संस्कृति, प्रतिष्ठा और गौरव की रक्षा करना भी है,** जो व्यक्ति किसी भी भूमिका में अपने आचरण द्वारा कर सकता है।

यह उल्लेखनीय है कि देश के दो रूप होते हैंः एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। उसका स्थूल रूप उसका भौगोलिक रूप है और उसका सूक्ष्म रूप उसका वाङ्मय, उसकी संस्कृति और मानव समाज को उसका दिया गया संदेश आदि हैं। देश का स्थूल रूप उसकी भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध होता है और वह स्थिर होता है। **उसका सूक्ष्म रूप गत्यात्मक होता है और वह भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध नहीं होता है।** उसकी विशालता उसमें अन्तर्विष्ट ज्ञान और संदेश की शाश्वतता पर निर्भर करती है। **इस दृष्टि से भारत का सूक्ष्म रूप उसके स्थूल रूप से अधिक व्यापक है।** मानवता को दिए गए **उसके संदेश विश्व व्यापी हैं। उसकी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं** और अब भी विश्व के

कोने कोने से लोग उसे समझने और सीखने के लिए भारत आते ही रहते हैं। चिरन्तन काल से भारत पर होने वाले आक्रमणों एवं आक्रमणकारियों के यहाँ बस जाने पर भी उस संस्कृति की आत्मा जीती जागती रह रही है।

जिस प्रकार देश के स्थूल रूप की रक्षा आवश्यक है उसी प्रकार बल्कि उससे बढ़कर उसके सूक्ष्म रूप की रक्षा आवश्यक है। वेदों के एक एक मंत्र बहुमूल्य हैं। एक श्लोक या श्लोक के भाग का विलुप्त होना भारतीय महान् बौद्धिक सम्पदा का विलुप्त हो जाना है। जब हम देश रक्षा की बात कहते हैं तो सामान्य रूप से उसके भौगोलिक रूप की रक्षा की बात कहते हैं उसके सूक्ष्म रूप पर ध्यान नहीं दिया जाता।

इस कर्तव्य का दूसरा भाग यह अधिकथित करता है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे। ऐसे तो बिना आह्वान के भी राष्ट्र की सेवा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है किन्तु आह्वान किए जाने पर उसे राष्ट्र की सेवा करना तो एक प्रकार से आबद्धकर है। यह सेवा सैन्य सेवा के अतिरिक्त अन्य सेवा भी हो सकती है। निम्नलिखित निर्णय से यह स्पष्ट है:

"जहाँ पर अध्यापकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सेवाएं सरकार द्वारा जनगणना, निर्वाचन, परिवार नियोजन इत्यादि कार्यों के लिए प्रदान करें, वहाँ सरकार के विरुद्ध अध्यापकों द्वारा यह रिट कि अध्यापन कार्य के अतिरिक्त और कोई कार्य उनसे न लिया जाए क्योंकि इसमें अनुच्छेद 23 का उल्लंघन होता है जारी नहीं की जा सकती। जिन सेवाओं के प्रदान करने की उनसे अपेक्षा की गई है वे अनुच्छेद 23 (2) में "लोक प्रयोजन" के अर्थ के भीतर हैं और उन्हें अनुच्छेद 51क के अधीन प्रत्येक नागरिक का "राष्ट्रीय सेवा " का मूल कर्तव्य भी माना जा सकता है।"[1]

अध्याय – 10

भ्रातृत्व की भावना और स्त्रियों का सम्मान

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क के खंड (ङ) में निम्नलिखित रूप में कथित है:

भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

उक्त कर्तव्य के दो अंग हैं:–

(1) भारत के सभी लोगों के बीच धार्मिक, भाषायी और प्रदेश या वर्ग के भेदभावों से ऊपर उठकर सद्भाव और आपसी भाईचारे की भावना का निर्माण करना और

(2) ऐसी प्रथाओं का परित्याग करना जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

इस कर्तव्य के प्रथम भाग के संबंध में यह कथनीय है कि भारतीय संविधान की उद्देशिका में भी यह कहा गया है कि संविधान का उद्देश्य अन्य बातों के साथ समस्त नागरिकों में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाना है। इस प्रकार भाई चारे की भावना को बढ़ावा देना, राष्ट्र का एक उद्देश्य है जिसके लिए प्रत्येक नागरिक को कार्य करना है। दूसरे, आपसी सद्भाव और भाईचारे की भावना बढ़ाना राष्ट्र निर्माण का एक कार्य है जिसकी राष्ट्र को नितान्त आवश्यकता है।

वस्तुतः किसी राजनीतिक प्रणाली की अधिकारिता (empowerment) के भीतर लोगों में एकता की भावना बढ़ाने को राष्ट्र निर्माण कहते हैं। एकता की भावना लोगों में निष्ठा, सामाजिक समेकता (unity) और प्रणाली की प्रभावी अग्रसरता की भावना प्रदान करती है। एकता की ऐसी भावना समाज के विभिन्न वर्गों और श्रेणियों को जोड़ती है और ऐसा मतैक्य और सहयोग उत्पन्न करती है जो आन्तरिक शान्ति और राजनीतिक प्रभावकारिता के लिए बहुत महत्त्व की है।

इसका तात्पर्य होता है धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा, धन्धे इत्यादि पर आधारित वर्ग निष्ठाओं से ऊपर उठकर लोगों के बीच एकजुट होने के बिन्दु के रूप में राष्ट्रीय पहचान की भावना को विकसित करना। दूसरे शब्दों में, इसमें अन्तर्निहित होता है एक वृहत्तर और केन्द्रीय राजनीतिक प्रणाली के रूप में राष्ट्र की वैधता की संकल्पना को विकसित करना। इससे परिणत होता है – एक राष्ट्र राज्य का विकास जिस मे अधिकांश लोगों की ऐसी प्राथमिक निष्ठा, प्रतिबद्धता और सामान्य पहचान की भावना होती है जिससे हितों की एकता की भावना पूरे राज्य में व्याप्त होती है।

राज्य निर्माण करने की समस्या, राष्ट्र निर्माण करने से घनिष्ठरूप में संबंधित है यद्यपि तकनीकी रूप से ये भिन्न–भिन्न हैं। राज्य निर्माण में, सत्ता के लिए और शासन की विद्यमान प्रणाली के लिए सम्मान अन्तर्वलित है। राष्ट्र निर्माण, राज्य निर्माण का अग्रणी होता है। सत्ता और राजनीतिक प्रणाली की संस्थाओं के सम्मान के लिए राष्ट्रीय पहचान की भावना एक पूर्व शर्त है। एक राजनीति शास्त्री का मत है कि राज्य निर्माण में राजनीतिक प्रणाली कि लिए समर्थन, राष्ट्रीय अथवा केन्द्रीय प्रणाली की वैधता और उसकी शासन की रीति को मानना आता है। यह भागतः एक सांस्कृतिक समस्या है– सत्ता की संकल्पनाओं पर मतैक्य बनाना जो प्रणाली को समर्थन देगी। एक अन्य राजनीति शास्त्री ने विकासशील देशों के बहु–साम्प्रदायिक रूप के प्रति निर्देश इन देशों में राष्ट्र निर्मित करने और वैधता के संकट से निपटने के महत्त्व को दिखाने के लिए किया है। उनका मत है कि विकासशील देशों की मुख्य राजनीतिक समस्या छोटे–छोटे आद्य वर्गों से निष्ठा को एक निरपेक्ष और सबको आवृत्त करने वाली ईकाई अर्थात् राष्ट्र राज्य पर ले जाना है। जब तक लोगों द्वारा इस सुसंगत सामाजिक समूह में सदस्यता की कसौटी को मान्यता नहीं दी जाती तब तक लोगों द्वारा लोकतांत्रिक प्रणाली में पूरे मन से भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती। इसीलिए विकासशील देशों के लिए राष्ट्र निर्माण नितान्त आवश्यक है।

इस कर्तव्य के विवेचनाधीन अंग के बारे में यह ज्ञातव्य है कि सारे मनुष्यों के प्रति समानता और एकत्व की भावना रखना तथा सारे विचारों या विचार धाराओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। भारत में इस प्रकार के विचार वैदिक काल से ही विद्यमान हैं। **सारे वेदों में इस प्रकार के अनेक मंत्र हैं जो आपसी एकता और सहिष्णुता के भाव को प्रतिपादित करते हैं।** इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :–

एकं सद्विप्रा बहुधावदन्ति (ऋ0 1–184–40)

सद् (अर्थात् ईश्वर) एक ही है तथापि विद्वान् इसे अनेक नामों से वर्णित करते हैं।

समानी वै आकूतिः समाना हदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।(ऋ0 10–191–4)

(हे मनुष्यों तुम्हारे संकल्प समान हों। तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे मन समान हों जिस से ऐसा आचरण करें जो सब को सुहाए।)

संगच्छध्वं संवदध्वं।(ऋ0 10–191–12)

(मिलकर चलो, मिल कर बोलो)

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माण पृथिवी यथौकसम्।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।। (अथ– 12–1–45)

(अनेक धर्मावलंबी, अनेक भाषाओं में बोलने वाले इस पृथ्वी पर एक परिवार जैसे हैं जिन्हें सहस्रों धाराओं की धन सम्पन्नता बिना भेदभाव के सदैव प्राप्त हो।)

भारतीय जीवन, धर्म और संस्कृति की मान्यता के अनुसार केवल मनुष्यों को ही नहीं अपितु सारे प्राणियों को अपने जैसा मानने की बात कही गई है। सारे विश्व को एक कुटुंब जैसा मानकर सबके साथ प्रिय और समान व्यवहार करने की बात कही गई है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः।।(गुरुणपुराण 1/11/2)

(जो दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के समान और सारे प्राणियों को अपने समान देखता है वही पंडित है।)

संनियमेन्द्रियग्रामं सर्वत्रसमबुद्धयः
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।(श्रीमद्भगवद् गीता 12/4)

(जो इन्द्रियों को वश में रखते हुए सर्वत्र समबुद्धि रखते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में लगे हुए मुझे (ईश्वर) प्राप्त होते हैं)

अयंनिजः परोवेति गणनालघुचेतसाम्।
उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।(हितोपदेश)

(यह मेरा है, वह दूसरे का है यह गणना तुच्छ बुद्धि वाले लोग करते हैं। उदार चरित्र वाले मनुष्यों के लिए पूरा विश्व ही एक कुटुम्ब के समान है।)

उक्त कर्तव्य की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने भी कहा है :

राष्ट्रीय अखंडता और जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयतावाद इत्यादि जैसी बुराइयों को दूर करने की बात कहने को राजनीतिक कर्यकलाप नहीं कहा जा सकता। सारे नागरिकों का यह कर्तव्य बनाया गया है, जिसमें सारे सरकारी कर्मचारी भी सम्मिलित हैं कि वे इस बारे में प्रतिपादित उद्देश्यों के लिए काम करें [1]।

इस कर्तव्य का दूसरा अंग जैसा ऊपर लिखा गया है निम्नलिखित है :

"ऐसी प्रथाओं का त्याग जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।"

इस देश की संस्कृति में नारी को सदा से ही सम्मान का पात्र माना गया है। वेदों और धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों की श्रेष्ठता और उन्हें समुचित सम्मान देने की बात निरंतर कही है।

यहाँ संक्षेप में ऐसे कुछ उद्धरणों को देना समीचीन होगा। ऋग्वेद में कथन है

ऋतचिद्धनारी (IV,16,10)

(नारी को अस्तित्व के आधारभूत सिद्धांतों का ज्ञान होता है।)

एक अन्य मंत्र में, जो नव विवाहिता स्त्री को आशीर्वाद के रूप में है, कहा गया है :

साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवा भव

ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु (ऋ0 10–85–46)

("अपने श्वसुर पर साम्राज्ञी की भाँति तुम्हारा शासन हो, अपनी सास पर साम्राज्ञी की भाँति तुम्हारा शासन हो, अपने पति की भगिनी और उसके भाइयों पर साम्राज्ञी की भाँति तुम्हारा शासन हो।")

इसी प्रकार धर्मशास्त्रों द्वारा उन्हें समुचित सम्मान देने को कहा गया है।

नीचे महाराज मनु के कुछ पाठों का उल्लेख किया जा रहा है:

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्र असफलाः क्रियाः।।(3,56)

(जहाँ नारियों का सम्मान होता है। वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं। जहाँ उनका सम्मान नहीं होता है वहाँ सारे कार्य असफल होते हैं।)

शोचयन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।

न शोचयान्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।(3,57)

(जहाँ नारी सम्बंधों कष्ट में रहती है वहाँ शीघ्र ही कुल नष्ट हो जाता है, किन्तु जिस कुल में वे अप्रसन्न नहीं रहती हैं वहाँ सदैव वृद्धि होती रहती है।)

जामयो यानि गेहानि शपयन्त्यप्रतिपूजिताः

तानि कृत्याहता नीव विनश्यन्ति समन्ततः।।(3,58)

(वे गृह जहाँ नारी संबंधों का समुचित सम्मान नहीं होता है वे शाप देती हैं और वे पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं जैसे जादू द्वारा ऐसा हो गया हो)

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत के दोनों महाकाव्यों में नारी के अपमान के मूल कारण से ही महायुद्ध हुए।

भारतीय परम्परा के अनुसार कन्या अथवा अविवाहिता बालिका को अतिशय पवित्र और सर्व प्रकार से रक्षणीय माना गया है। उसका समुचित पालन पोषण और योग्य व्यक्ति से विवाह प्रत्येक व्यक्ति का एक पुनीत दायित्व माना जाता है। कन्याएँ पिता के घर में विशेष सम्मान की पात्र होती हैं। महाराज मनु ने कहा है कि **"नवविवाहिता कन्याओं, अविवाहिता कन्याओं, गर्भवती महिलाओं को अतिथियों (जिन्हें उपनिषद् में देवता के समान कहा गया है) के पहले भोजन कराया जाना चाहिए (3–14)**

विवाहिता नारी समाज में विशेष सम्मान की पात्र होती थी। भारतीय परम्परा में पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी माना गया है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि पत्नी स्वयं की अर्द्धभाग है, पत्नी समग्र रूप से मित्र होती है (6–85) **वृहस्पति का कथन है कि** "श्रुति में, स्मृतियों में और लोक व्यवहार में विद्वानों द्वारा पत्नी को पति के शरीर का अर्द्धभाग कहा गया है और वह पति के अच्छे और बुरे कार्यों का अर्द्ध भाग प्राप्त करती है। **जिसकी पत्नी का देहांत नहीं हुआ है, उसके शरीर का अर्द्धांग अभी जीवित है तो फिर उसकी (मृतक की) संपत्ति को कोई और कैसे ले सकता है।**

नारी संबंधियों में माता को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। उपनिषद् का कथन है कि माता देवता के समान है (मातृदेवोभव)। गौतम कहते हैं कि आचार्य (वेद की शिक्षा देने वाला) गुरुओं में सर्वश्रेष्ठ है, जब कि कुछ अचार्य कहते हैं कि माता सर्वश्रेष्ठ गुरु है (2–56)। **आपस्तम्ब का मत है** कि पुत्र को अपनी माता की सेवा सर्वदा करनी चाहिए चाहे वह जातिच्युत भी हो क्योंकि माता उसके लिए अनेक कार्य करती है (1.10.28)। **बौधायन कहते हैं** कि पुत्र को अपनी माता का भरण–पोषण अवश्य करना चाहिए यद्यपि

वह जातिच्युत क्यों न हो (2.2.48)। मनु का मत है कि आचार्य (वेदों की शिक्षा देने वाला) अपनी महानता में दस उपाध्यायों से बढ़कर होता है, पिता सौ आचार्यों से बढ़कर होता है, और माता सहस्र पिताओं से बढ़कर होती है (2.145)। संस्कृत के दोनों महाकाव्यों में माता को सर्वोच्च सम्मान दिए जाने का कथन है। लंका विजय के पश्चात् राम का अग्रलिखित कथन स्मरणीय है।

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। (वाल्मीकि रामायण)

(हे लक्ष्मण सोने की लंका मुझे रुचिकर नहीं है। माता और मातृभूमि स्वर्ग से बढ़कर है।)

नारी को समाज में प्रचलित प्रथाओं, चलनों और व्यवहारों का ज्ञाता माना गया है। यह कहा गया है कि आचार (लोकाचार) के बारे में नारियों से राय ली जानी चाहिए। कुछ आचार्यों के अनुसार धर्मसूत्रों में कथित नियमों को अन्य के अलावा नारियों द्वारा भी समझा जाना चाहिए। (आपस्तम्ब 2 11 29.15)

धर्मशास्त्रों के अनुसार नारी को समाज में और शासन की ओर से अनेक संरक्षण और सुविधाएं प्राप्त थी। यह कहा गया है कि जैसे वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण कर से मुक्त थे उसी प्रकार सारे वर्णों की महिलाओं को कोई कर नहीं देना होता था। **सड़क पर चलने में नारियों को प्राथमिकता प्राप्त थी।** यदि किसी कानूनी कार्रवाई में नारी पक्षकार होती थी तो उसे अनुचित प्रभाव से बचाने की सावधानी आवश्यक थी। **दंड देने के बारे में यह कहा गया है कि महिलाओं के प्रति अधिकतम उदारता बरती जानी चाहिए। यह मान्यता थी कि किसी भी कारण से नारी का वध नहीं किया जाना चाहिए।** नारी का वध भारी पातक माना जाता था। प्रायश्चित्त के मामले में नारियों के बारे में नियम बहुत उदार थे। नारियों की संपत्ति को विशेष संरक्षण प्राप्त था। नारियों को संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार था और कोई संबंधी उनकी संपत्ति ले नहीं सकता था। भारतीय संस्कृति में सदा से नारियों के प्रति सम्मान होने की बात को मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन पर संसद् (लोक सभा) में बहस में अपने समापन भाषण में विधि मंत्री गोखले ने भी कहा था :

"उपखंड (ङ) के प्रति भी निर्देश किया गया था। यह मेरे माननीय मित्र इब्राहिम सुलेमान द्वारा उठाया गया था। मैं नहीं समझा कि क्या आपत्ति थी। यह कहा गया था कि यदि आपको नारियों की प्रतिष्ठा का समादर करना है तो क्या इसका यह अर्थ है कि आपको पुरुषों की प्रतिष्ठा का अथवा अन्य की प्रतिष्ठा का समादर नहीं करना है। निश्चित रूप से आप इस पर दृष्टि डालें तो किसी को भी यह समझना सरल होगा कि नारियों का भारत में सदा से ही समादर हुआ है और उन्हें सम्मानित किया गया है। सारी सांस्कृतिक विरासत ऐसी है कि हम अपनी नारियों का सम्मान करते रहे हैं। अपनी नारियों का समादर करते रहे हैं और यह सुनिश्चित करते रहे हैं कि उनकी प्रतिष्ठा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। फिर भी कतिपय बातों से, कतिपय कुप्रथाएं घुस आईं [1]।"

मध्य काल में विशेषतः देश की दासता के काल में नारियों की स्थिति में गिरावट आई और कुछ कुप्रथाएं भी चल पड़ी जैसे सती प्रथा, परदा प्रथा या दहेज आदि।

अंग्रेजी शासन के काल से ही नारियों की स्थिति में पुनः सुधार होना प्रारंभ हो गया। यह स्वयं हिन्दुओं द्वारा इसके लिए मांग और समाज सुधार आन्दोलनों के कारण हुआ।

बंगाल सती रेगुलेशन 1829 ने बंगाल मे सती प्रथा को समाप्त किया। देवदासी प्रथा और दहेज प्रथा का अधिनियम द्वारा अन्त कर दिया गया। उत्तराधिकार में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार दिए गए हैं। उसी प्रकार विवाह, विवाह विच्छेद और दत्तक ग्रहण में पुरुषों और स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त हैं।

इस प्रकार यह **कर्तव्य पूर्णतः भारतीय आदर्शों, परम्पराओं एवं संस्कृति की अनुरूपता में है।**

तथापि **भारत के नागरिकों का एक ऐसा वर्ग है जिसमें विवाह, विवाह–विच्छेद तथा भरण पोषण संबंधी विधियां ऐसी हैं जो नारियों के लिए भारी रूप में विभेदकारी और उत्पीड़नकारी हैं। इन्हें नारियों के लिए सम्मान जनक नहीं कहा जा सकता है।** उक्त वर्ग में जहाँ तक विवाह और विवाह–विच्छेद संबंधी विधि का प्रश्न है पुरुष चार नियमित विवाह कर सकता है। वह जब चाहे पत्नी को तलाक दे सकता है। पत्नी को तलाक देने की अनेक विधाओं में से एक विधा यह है की पति के तीन बार तलाक देने की बात का उच्चारण कर देने मात्र से ही तलाक हो जाता है। तलाक के पश्चात् पत्नी

केवल इद्दत (तीन मासिक धर्मों तक) काल तक ही पति से भरण–पोषण पाने की हकदार है। ये विधियां नारियों के लिए सम्मानजनक नहीं कही जा सकती।

तथापि क्योंकि मूल कर्तव्य न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं अतएव न्यायालय द्वारा इस बारे में कोई बाध्यकारी कार्रवाई नहीं की सकती। वस्तुतः यह स्थिति राज्य द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन न करने से भी विद्यमान है। सरकार द्वारा अपने कर्तव्य का पालन निम्नलिखित में नहीं हो रहा हैः

(1) नागरिकों के व्यक्तिगत रूप से कर्तव्य सामूहिक रूप से राज्य के कर्तव्य भी हैं। राज्य अपने कर्तव्यों का पालन विधियाँ बनाकर कर सकता है। वह ऐसी प्रथाओं का अन्त विधियां बनाकर कर सकता है जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं। तथापि राज्य ने ऐसा नहीं किया है।

(2) राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य से यह अपेक्षा है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। **तथापि राज्य ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया है।** उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि यह खेद का विषय है कि संविधान का अनुच्छेद 44 एक मृत उपबंध बना रहा है... देश के लिए एक समान सिविल संहिता बनाने के लिए कोई कार्रवाई किए जाने का साक्ष्य नहीं है। उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125, जो पत्नी को (जिसमें तलाक–प्राप्त पत्नी भी आती है) **भरण पोषण देने का दायित्व पति पर डालती है, मुसलमान पति पर भी लागू होती है और मुसलमान विधि का नियम कि इद्दत के पश्चात् तलाक–प्राप्त पत्नी को भरण–पोषण देने का पति का दायित्व नहीं है लागू नहीं होगा [1]। तथापि सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 1986 पारित कर उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय को निराकृत कर दिया। निश्चित रूप से यह एक प्रतिगामी कदम था।** उच्चतम न्यायालय ने पुनः अभी हाल के एक मामले में मत व्यक्त किया हैः "यह खेद का विषय है कि संविधान के अनुच्छेद 44 को प्रभावी नहीं किया गया है। देश में समान सिविल संहिता विरचित करने के लिए अभी कदम उठाना है। समान सिविल संहिता आदर्शों पर आधारित विरोधों को समाप्त करने के द्वारा राष्ट्रीय अखंडता के प्रयोजन में सहायक होगी [2]।"

(3) संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 में क्रमशः विधि के समक्ष समता और किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर राज्य द्वारा कोई विभेद न करने का समादेश है। **मुसलमान महिलाओं के बारे में विवाह, विवाह विच्छेद और भरण–पोषण संबंधी प्रावधान समता के प्रावधान के उल्लंघन में है और, लिंग के आधार पर विभेदकारी है। इस प्रकार समान सिविल संहिता न बनाए जाने से संविधान के उपर्युक्त उपबंधों का उल्लंघन हो रहा है।**

(4) **मुसमान महिलाओं के संबंध में उपर्युक्त असमानता–पूर्ण और विभेदकारी प्रावधानों से अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं एवं प्रंसविदाओं का भी उल्लंघन होता है,** विशेष रूप से आर्थिक, समाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 और सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 का, जो राज्य का यह कर्तव्य बनाती है कि वह विधि द्वारा सभी को समान और बिना किसी भेद–भाव के समान संरक्षा प्रदान करे और जिस का भारत भी हस्ताक्षरिती है।

वस्तुतः सरकार द्वारा संवैधानिक उपबन्धों और अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शनों के अधीन अपने कर्तव्यों का पालन न करने से ऐसी स्थिति विद्यमान है। सरकार को अपनी क्रियाशीलता से मूल कर्तव्यों के पालन को सुकर बनाना चाहिए, जो नहीं हो रहा है।

अतएव एक वर्ग की नारियों के विरुद्ध असम्मानजनक प्रथाओं का जारी रहना सरकार की निष्क्रियता के कारण है और सरकार आवश्यक कदम उठाकर ही इस कर्तव्य पालन को सुनिश्चित कर सकती है।

अध्याय – 11

देश की सामासिक संस्कृति का परिरक्षण

उक्त कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (च) में निम्नलिखित रूप में कथित है :

"हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे"

इस कर्तव्य की व्याख्या करने के पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि यह उल्लेख कर दिया जाए कि संस्कृति के पूर्व "सामासिक" विशेषण को संसद् के भारतीय संस्कृति प्रेमी सदस्यों द्वारा उपयुक्त नहीं माना गया था। तदनुसार इस कर्तव्य की शब्दावली के परिवर्तन के लिए संसद् में संशोधन प्रस्तुत किए गए थे जिसमें "सामासिक संस्कृति" के स्थान पर "महान् प्राचीन संस्कृति" शब्द रखने की बात कही गई थी। इस संदर्भ में निम्नलिखित वक्तव्यों के प्रति निर्देश किया जा सकता है।

लोक सभा के माननीय सदस्य श्री ओ. वी. अलगेसन ने कहाः

"अगला संशोधन उपखंड च के बारे में है जो यह सामासिक संस्कृति की बात करता है। मेरा मानना है कि परिभाषा द्वारा कोई भी संस्कृति सामासिक होती है। किसी देश की किसी संस्कृति को लीजिए। इसे सामासिक होना है, क्योंकि किसी देश की संस्कृति में, किसी समाज की संस्कृति में अनेक धाराएँ आकर मिलती हैं और वे सामासिक संस्कृति बनाती हैं। जब मैं पूर्ववर्ती वक्ता को सुन रहा था तो मैंने यह महसूस नहीं किया। हमारी संस्कृति ऐसी सामासिक है जो मान लिया गया है उससे अधिक अन्तर दिखाई देता है।"

आप देखेंगे कि सामासिक शब्द अनुच्छेद 351 में आता है जो हिन्दी भाषा के प्रति निर्देश से है।

यह वहाँ है जहाँ आप सामासिक शब्द पाते हैं। **मैं अब अपनी संस्कृति के बहुत प्राचीन रूप पर जोर देना चाहूँगा। यह कल की या कुछ शताब्दियों पुरानी नहीं है, यद्यपि सामासिक संस्कृति से अर्थ उस संस्कृति से है जो इस देश में मुसलमान शासन के प्रारंभ के बाद इस देश में विकसित हुई।** हमने इसकी परिणिति उत्कृष्ट स्मारक में जिसे आगरा का ताजमहल कहा जाता है, देखा है। इसने हमारी संस्कृति में योगदान किया। इसके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु वही एक मात्र संस्कृति नहीं है। यदि आप तमिलनाडु में जाएं तो हमारे पास तमिल और संस्कृत की दो संस्कृतियां हैं। यह केवल संस्कृत से ही नहीं है कि हम स्थिरता प्राप्त करते हैं। हम अपनी स्थिरता तमिल से भी प्राप्त करते हैं, यह स्वीकार भी किया गया है कि तमिल उतनी ही प्राचीन है जितनी संस्कृत। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम एक या दूसरे को नकार दें, या उनको अलग करें। वे आपस में ऐसी गुंथी है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है।

यह इस कारण से है कि उस बात से मुझे बहुत दुख हुआ जो श्री मनोहरन् ने संस्कृत के बारे में कहा। उन्होंने संस्कृत के बारे में कुछ अपमानजनक बातें कही। मैंने देखा कि इन टिप्पणियों से हमारे सदस्यों को दृश्यमान रूप से कितना कष्ट हुआ। उन्होंने हल्के भाव से कहा–यह कहना आजकल फैशन है कि संस्कृत एक मृत भाषा है। मैं आपसे पूछता हूँ– क्या संस्कृत एक मृत भाषा है? यह भारत की उत्तर भारतीय सभी भाषाओं में विद्यमान है। यह प्रतिदिन बोली जाती है। **आप उत्तर भारत की बोले जाने वाली भाषा से संस्कृत को हटा दीजिए तो बोलने के लिए कुछ नहीं रह जाएगा। संस्कृत की प्राचीन वाक्य रचना, प्राचीन व्याकरण वहाँ नहीं हो सकता है–किन्तु यह भाषा जीवित और स्पन्दनशील शक्ति है,** जो हमारी **स्पन्दनशील संस्कृति और सभ्यता को दिखाती है।** इसलिए जब मैंने श्री मनोहरन् को उस प्रकार बोलते हुए सुना तो मुझे खेद हुआ। कदाचित् उन्होंने ऐसा अज्ञानतावश किया।

यह सत्य है कि हमने कुरान के और बाइबिल के ज्ञान और संस्कृति को अपनाया। किन्तु उपनिषदों की, वेदों की और भगवद् गीता के ज्ञान और संस्कृति के बारे में क्या है? तिरुक्कुरल, तिरुवाचकम् और तिरुवादिमों आदि के बारे में क्या है? इन संस्कृतियों के बारे में क्या है? यह एक प्रबुद्ध संस्कृति है, यह एक सामासिक संस्कृति है।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

सत्य एक है किन्तु बुद्धिमान् इसे विभिन्न नामों से कहते हैं। यह इसका अर्थ है। यह इस सहनशीलता की इस व्याख्या से था कि भारत खुली बाहों से अन्य संस्कृतियों का स्वागत करने में समर्थ हुआ। यह इस प्रकार है कि हमारे समाज में सहिष्णुता की विशेषता विकसित हुई [1]।"

राज्य सभा के माननीय सदस्य श्री कृष्णराव नारायण धूलप ने राज्य सभा में कहा :

"सामासिक " संस्कृति के बारे में एक सन्देह उत्पन्न हुआ है, मैं नहीं जानता कि यह सामासिक संस्कृति क्या है। इस देश में हम सभी भारतीय हैं। मैं महाराष्ट्र का हूँ। कोई बंगाल अथवा आंध्र का हो सकता है। इस रूप में हम सभी भारतीय हैं। विविधता में एकता है। इस प्रकार से हम सभी एक सूत्र में बंधे हैं और यह हमारी राष्ट्रीयता है। **हम सभी भारतीय हैं और हमारी संस्कृति भारतीय संस्कृति है, महान् भारतीय संस्कृति।** श्री गोखले ने संविधान पर अपनी पुस्तक में जो उन्होंने प्रकाशित की है और सदन के माननीय सदस्यों को दिया है के प्राक्कथन में हमारे देश को एक महान् प्राचीन देश के रूप में कहा है। उसी प्रकार हमारी संस्कृति एक महान प्राचीन संस्कृति है, जो इस देश के सभी लोगों को एक साथ बांधती है। इसलिए मैंने महान् प्राचीन संस्कृति शब्दों को रखा है[1]।"

यद्यपि मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन पर बहस के दौरान जिन सदस्यों ने सामान्य रूप से इस कर्तव्य के समर्थन में वक्तव्य दिया था उन्होंने सामासिक संस्कृति का तात्पर्य इस देश के विभिन्न भागों में विकसित संस्कृतियों के अर्थ में लिया था और उनहोंने भी प्राचीन भारतीय संस्कृति की प्रशंसा की जैसाकि उनके वक्तव्य से देखा जा सकता है।

इस संबंध में **लोक सभा के माननीय सदस्य श्री वसंत साठे** ने संशोधन विधेयक पर बहस के दौरान कहा :

"अन्य राष्ट्रों की सभ्यताएं चली गई हैं। केवल हमारे राष्ट्र के पास कतिपय आधारभूत मूल्य हैं। उन आधारभूत मूल्यों को हम संविधान के सर्वाधिक सुन्दर अध्यायों में से एक अर्थात् कर्तव्यों के अध्याय में–समाविष्ट करने का भी प्रयत्न कर रहे हैं। इन कर्तव्यों का सर्वाधिक सुन्दर रूप में प्रारूपण किया गया है और ये उससे भिन्न हैं जो स्वर्ण सिंह कमेटी द्वारा भेजी गई थी। जिसने भी इसका प्रारूपण किया है, जिस हाथ ने भी इसको लिखा है मैं उसकी प्रशंसा करना चाहता हूँ और उसे बधाई देना चाहता हूँ। ये वे सर्वोत्तकृष्ट कर्तव्य है जिन्हें लागू किया जाना हैं। ये मार्गदर्शक हैं वे आचरण की संहिता हैं जिसे प्रत्येक नागरिक को बचपन से ही मस्तिष्क में रखना है। अन्य बातों का विनिश्चिय करते समय यह भी एक मार्गदर्शक अथवा संकेत देने वाला हो सकता है। इसलिए एक सर्वोत्तम कर्तव्य यह है कि हम अपनी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें। किसी ने कल कहा कि हम आधिभौतिक दार्शनिक विचारों के भीतर जा रहे हैं। हम इसमें लज्जा क्यों अनुभव कर रहे हैं। इस राष्ट्र के पास वह मूल्य है। यह राष्ट्र अपने दर्शन के कारण, अपने शंकर के, अपने महान् ऋषियों के कारण, गीता के कारण, गांधी जी के कारण, बुद्ध के कारण महान् है। मैं कह सकता हूँ कि जब तक हमारे पास आध्यात्मिक शक्ति है जो एक सर्वश्रेष्ठ महान् वरदान है जो हमारे राष्ट्र, हमारे दल और देश के पास है, जो नेतृत्व को प्राप्त है, जो उस भावना को प्रज्ज्वलित करती है जिसके बिना हम उन्नति नहीं कर सकते हैं। अन्यथा, कोई भी इस ऊर्जा और प्रेरणा को नहीं पा सकता है। इस लिए मेरे मित्रों! उदासीन मत अनुभव करिए। यदि कहीं आप में इसके प्रति उदासीनता आती है तो मैं केवल गीता से एक श्लोक उद्धृत करूँगा। मैं अपने मित्र मनोहरन् से कह सकता हूँ कि **भारत की सारी भाषाएं संस्कृत पर आधृत हैं और जब तक आप मूलभूत संस्कृत को नहीं समझते तब तक भारतीय भाषाओं का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए एक क्षण को भी संस्कृत की निन्दा करने का प्रयत्न मत कीजिए।** जो लोग विश्वास खो रहे हैं और उदासीनता ला रहे हैं, मैं गीता से यह श्लोक उद्धृत कर रहा हूँ:

क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ नैतत्वययुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।। (अध्याय 2)

"हम अवसर के अनुरूप ऊंचे उठें और इस संशोधन को पारित करें जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज है और जितना शीघ्र हो सके इसे लोगों को प्रदान करें [1]।"

इस कर्तव्य की व्याख्या में सर्वप्रथम यह बताना समीचीन प्रतीत होता है कि प्रत्येक देश या राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है। संस्कृति उस देश के प्राचीन काल से विकसित सामाजिक मूल्यों मानकों और

आदर्शों को अन्तर्विष्ट करती है। यही मूल्य उस समाज को जीवन्तता देते हैं और आगे बढ़ने की प्रेरणा। उनमें आपसी एकता, सद्भावना, बंधुत्व, सहिष्णुता प्रदान करते हैं और सारे देश या राष्ट्र को एक साथ जोड़ने के आधारभूत तत्त्व होते हैं। इसलिए **संस्कृति का सम्मान देश के प्रत्येक नागरिक का एक कर्तव्य होता है।**

यह निवेदन करना समीचीन प्रतीत होता है कि भारतीय संस्कृति उदारवादी और प्रवहमान रही है। इसमें भारत के विभिन्न जनजातियों की संस्कृतियों के रीति रिवाजों के समाविष्ट होने के साथ ही यूनानी, शक, हूण, सीदियन मंगोल आदि जातियों की या मूल वंशों की जो इस देश में आए संस्कृति के तत्त्व भी समाहित हैं फिर भी वह भारतीय संस्कृति के रूप में ही बनी रही।

इसे **कभी–कभी गंगा–यमुनी संस्कृति भी कहा जाता है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि यमुना के गंगा से मिल जाने पर भी गंगा का नाम गंगा ही रहता है। यमुना के समान ही अनेक अन्य छोटी बडी नदियाँ भी गंगा में मिलती हैं किन्तु उनके मिलने के पश्चात् भी वह जल धारा गंगा ही रहती है।**

इस प्रकार भारतीय संस्कृति विश्व की बहुत सारी अन्य संस्कृतियों को अपने में समेटती हुई भारतीय संस्कृति ही है न कि सामासिक संस्कृति। संस्कृति के पूर्व सामासिक विशेषण एक विभाजन रेखा खींचता है जो राष्ट्रीयता के हित में नहीं है। यदि संस्कृति सामासिक है तो भारतीय राष्ट्रीयता, जिसका मूल आधार सांस्कृतिक एकता है, सामासिक हो सकती है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में हिन्दुओं के साथ–साथ मुसलमानों और ईसाइयों ने भी योगदान दिया है। उपर्युक्त तर्क के आधार पर राष्ट्रभाषा भी सामासिक हो सकती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता के साथ सामासिक शब्द का प्रयोग उपयुक्त नहीं है। क्योंकि यह इसके प्रवहमान और वास्तविक विकासशील स्वरूप को दर्शित न करके इसे अनेक तत्त्वों का बना एक ढाँचा दर्शित करता है। इसलिए उसकी लघुता दर्शित करता है।

अब यह समीचीन है कि संस्कृति शब्द के अर्थ, भारतीय संस्कृति की महानता और उसके सम्मान की अपेक्षा जो प्रस्तुत मूल कर्तव्य की विषयवस्तु है उस पर प्रकाश डाला जाए।

संस्कृति का अर्थ है : संस्करणम् इति संस्कृतिः अर्थात् जिससे (आत्मा का) संस्कार हो सके।

"संस्कृति का विश्लेषण निम्नलिखित श्लोक में किया गया है :

आत्मनः मनसः बुद्धेः इन्द्रियादीनां सर्वविधिः

सत्कर्मभिः पवित्रीकरणम् संस्कृतिः।।"

(अर्थात सत्कर्मों से मन, बुद्धि, इन्द्रियादि का सर्वविधि पवित्रीकरण अर्थात् पवित्रता को ग्रहण करना ही संस्कृति है।)

इसका तात्पर्य है व्यक्ति को बाह्य तथा आन्तरिक रूप से उदात्त बनाने वाली प्रक्रिया अथवा आचरण संस्कृति है। यह उदात्तता वसुधैव कुटुम्बकम् एवं समस्त प्राणियों के प्रति दया और सहानभूति रखने की भावना में निहित है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय संस्कृति की पहचान उसकी यही विशेषता है। इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर इस पर प्रकाश डाला गया है। इस रूप में संस्कृति मनुष्य के बौद्धिक तथा नैतिक उत्थान का मूल आधार होने के साथ ही सम्पूर्ण समाज की उन्नति का साधक है। अपनी इस विशेषता के कारण भारतीय संस्कृति ने सहिष्णुता की विशाल क्षमता ग्रहण की और इसने बाहर से आने वाली अनेक संस्कृतियों को आत्मसात करते हुए अपना मूल स्वरूप कायम रखा। वस्तुतः संस्कृति का यही स्वरूप विश्व में भाईचारा बढ़ाने में और विश्व शांति लाने में सहायक हो सकता है।

भारत एक अति प्राचीन राष्ट्र है। उसकी अपनी एक चिरन्तन संस्कृति है। वेद, धर्मशास्त्र, पुराण और नीति ग्रंथ आदि उसे अन्तर्विष्ट करते हैं।

संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है। एक प्राच्य ज्ञान वेत्ता डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल संस्कृति का राष्ट्र के साथ अनिवार्य संबंध मानते हैं। उनके अनुसार विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है वही उसकी संस्कृति है। **संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांग पूर्ण प्रकार है।**

संस्कृति राष्ट्र निर्माण की आधारशिला होती है तथा राष्ट्र निर्माण, राज्य निर्माण का आधार होता है। इस प्रकार संस्कृति राज्य निर्माण की महत्वपूर्ण कड़ी होती है।

भारत के वासियों में रूप–रंग वेशभूषा, भाषा तथा धार्मिक विश्वास की विभिन्नताओं में भी एक आन्तरिक एकता का सूत्र विद्यमान है। वह सूत्र देश की संस्कृति है। इसी के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति अपने को इस समूचे देश का अंग समझता है तथा देश को अपना मानता है। इसी के कारण एक देशवासी यद्यपि वह कुँए पर भी स्नान कर रहा होता है, निम्नलिखित मंत्र उच्चारण कर पवित्रता का अनुभव करता है।

गंगेचयमुने चैव गोदावरी सरस्वती

नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु।

यह उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द ने भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के तत्त्व को देखा। इस सांस्कृतिक दृष्टि की विशेषता दया, उदारता, त्यागवृत्ति, सहिष्णुता, समन्वय भावना, सर्वाहित की कामना है।

संस्कृति ने ही राष्ट्र के रूप में हमें जीवनीशक्ति और प्रेरणा दी है और उसी के कारण यह राष्ट्र अमर है। विश्व में प्रचीनकाल से अनेक राष्ट्र और संस्कृतियों का उदय अस्त होता रहा पर **भारतीय संस्कृति और तद्निर्मित यह राष्ट्र अजेय रहा। दीर्घकाल तक देश में विदेशी सत्ता रहने के बावजूद राष्ट्र अविजित रहा।**

यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति केवल भारत की भौगोलिक सीमाओं के भीतर ही नहीं अपितु विश्व के एक बड़े भाग में विद्यमान है। प्रायः सारा एशिया विशेषतः नेपाल, तिब्बत, भूटान, चीन, जापान, थाईलैंड, इन्डोनेशिया और पूर्वी द्वीप समूह में इसका अपना स्थान है। इसके साथ ही जिन देशों में भारतीय मूल के लोग बड़ी संख्या में बसे हैं जैसे मारीशस, त्रिनिडाड, सूरीनाम, गयाना, फिजी आदि वहां भी इस संस्कृति की मान्यता एवं समादर है। पश्चिमी देशों में जहां भारतीय मूल के लोग बड़ी संख्या में हैं अपनी मूल संस्कृति को अपनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

भारतीय संस्कृति **अपनी विशेषताओं के कारण विश्व के एक बड़े भूभाग मे व्याप्त है और जीवन्त और अजेय है।** मानवतावाद और विश्वशांति का संदेश इसके मूल तत्त्व हैं। अतएव यह सम्माननीय, वंदनीय, और परिरक्षणीय है। प्रस्तुत मूल कर्तव्य इसी बात को अन्तर्विष्ट करता है।

अध्याय – 12

पर्यावरण की रक्षा

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) में निम्नलिखित रूप में कथित हैः "प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करना और उनका संवर्धन करना तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखना"

इस कर्तव्य के बारे में लोक सभा के सदस्य श्री शंकर दयाल सिंह ने एक संशोधन पेश किया था, जो निम्नलिखित हैः

"इसके बाद (छ) के अंदर मैंने नदी और वन्य जीवों के साथ–साथ पक्षियों की भी चर्चा की है। मैंने यह कहा है कि आप नदी और अन्य वन्य जीवों के साथ पक्षियों को भी जोड़ दीजिए। वह इसलिए कि जब मयूर को आप ने राष्ट्रीय पक्षी मान लिया और घोषित भी किया है तो कुछ ऐसे पक्षी भी हैं जिनके वंश आज लुप्त होते जा रहे हैं। संसार के कई बेचारे चहचहाते हुए पक्षी जिनकी जबान हम चुरा लेते हैं, कभी–कभी जिन्हें हम पिंजरे में बंद करके मनोरंजित होते हैं, ऐसे पक्षियों का भी जिक्र उसमें होना चाहिए और उनकी भी रक्षा होनी चाहिए[1]।

यद्यपि उक्त संशोधन स्वीकार नहीं किया गया तथापि वस्तुतः वन्य जीवन में पक्षी भी आएंगे, कम से कम वन में रहने वाले पक्षी।

आधुनिक काल में पर्यावरण की रक्षा एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का विषय हो गया है। पर्यावरण की रक्षा मनुष्य के जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। औद्योगीकरण, शहरीकरण एंव व्यावसायिकता ने इस पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला है। इसकी रक्षा के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर अनेक यत्न किए जा रहे हैं। वस्तुतः राष्ट्रों द्वारा किए जाने वाले प्रयत्नों के साथ इसके लिए नागरिकों या व्यक्तियों की कटिबद्धता भी आवश्यक है। पर्यावरण की रक्षा को इसलिए नागरिकों का एक मूल कर्तव्य बनाया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण की रक्षा भारतीय परम्परा का एक अभिन्न अंग है। इसके महत्त्व को देखते हुए इसे धर्म के अंग के रूप में माना गया था। प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा का एक मुख्य अंग वनस्पति जगत की रक्षा और उसका सम्वर्द्धन है। **प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार वृक्ष लगाना एक पुण्य कार्य माना जाता है और वृक्षों को काटना पाप कर्म।** प्रत्येक गांव में बगीचे, विशेष रूप से आम के बगीचे पाए जाते है। उत्तर भारत (विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार) में कहीं कहीं पर समर्थ लोग मनौती या मन्नत के रूप में संकल्प लेकर आम के लाख वृक्ष लगाते थे जिसे लखराँव (लक्षाम्र) कहा जाता हैं। अब भी ऐसे अनेक लखराँव विद्यमान हैं। **यह उल्लेखनीय है कि आम का फल राष्ट्रीय फल है।** आम के बगीचे लगाने पर उसमें से दो श्रेष्ठ किस्म के आम के वृक्षों को चुनकर उन्हें राजा रानी अभिधान से सम्बोधित किया जाता था और उनका शास्त्रीय पद्धति से विवाह किया जाता था। **स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी वृक्षों को देवता स्वरूप या देवताओं के वास स्थान के रूप में पवित्र और रक्षा योग्य माना गया है जैसे नीम, पीपल, तुलसी आदि और उनकी पूजा की जाती है।**

जल को भारतीय संस्कृति में सदा से पूजनीय माना गया है। आर्यों में आदिकाल से मान्य देवताओं में वरुण का विशेष स्थान है जो जल के देवता हैं। जल के पर्यायवाची शब्दों की संख्या में ज्ञात होगा कि जल को भारतीय संस्कृति में कितना महत्त्व दिया गाया है। जल को पानी, नीर, तोय, वारि, पय, सलिल, उदक आदि नामों से जाना जाता है। उसका एक नाम जीवन भी है। गृह कार्यों में पूजा कार्यों आदि में वह एक मुख्य उपादान है। पूजा–पाठ, नदी–पोखरों तालाब या झील के तट पर करना विशेष फलदायक माना जाता है।

उसी प्रकार **भारतीय संस्कृति में नदियों को विशेष महत्त्व दिया गया है** उनमें देवत्व का आरोपण किया गया है। गंगा को पवित्र माना जाता है और अनेक नदियों के जल को भी उसी प्रकार माना गया है। विशेष पर्वों पर पवित्र नदियों में स्नान करना आध्यात्मिक फल देने वाला माना जाता है। हिन्दुओं में दाह संस्कार सामान्यतया नदी के तट पर किए जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक जल से निकटता रखी जाती है।

वनों का भी भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है। वन में भी देवता की कल्पना की गई है और उक्त देवता को वन देवता कहा जाता है। कहा जाता है कि गया में छह वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात् सिद्धार्थ गौतम को सुजाता ने वन देवता समझकर खीर खिलाई थी। वन आध्यात्मिक जीवन और चिन्तन के स्थान माने जाते थे। ऋषियों, मुनियों के आश्रम वनों में होते थे। यहाँ गुरु शिष्यों को शिक्षा देता था। महाकवि **कालिदास ने 'रघुवंश' में लिखा है कि "वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां।"** (रघुकुल के राजा वृद्धावस्था में मुनि वृत्ति ग्रहण कर लेते थे– अर्थात् वन में जाकर निवास करते थे)। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि 'चौथे पन नृप कानन जाहीं' (चौथेपन अर्थात् वृद्धावस्था में राजा वन में चले जाते थे)। यह ज्ञातव्य है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् धृतराष्ट्र आदि वन में चले गए थे। वन की रक्षा करना राजा का कर्तव्य था। तथापि वन राजा के राज्य के बाहर माना जाता था, अर्थात् वहाँ उसका आधिपत्य नहीं होता था। आश्रम स्वाध्याय के एक स्वायत्त या स्वशासी संस्था के रूप में कार्य करते थे। इस प्रकार वनों के महत्त्व और उनको दिए गए संरक्षण को भारतीय संस्कृति में विशेष स्थान प्राप्त है।

हिन्दुओं के संस्कारों में विशेषतः विवाह के अवसर पर देश के पूर्व महापुरुषों का नाम स्मरण करने के साथ ही नदी पर्वत वृक्षों, नदियों आदि का स्मरण कर उनके द्वारा मंगल किए जाने की कामना की जाती है।

इसे निम्नलिखित उदाहरण से देखा जा सकता हैः–

अश्वत्थो वटवृक्ष–चन्दन–तरुर्मन्दार–कल्पद्रुमौ
जम्बू–निम्ब कदम्ब–चूत–सरला वृक्षाश्च ये क्षीरिणः।
सर्वे ते फलसंयुताः प्रतिदिन विभ्राजनं राजते
रम्यं चैत्ररथं च नन्दनवनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।
गङ्गा सिन्धु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कावेरी सरयू महेन्द्रतनया चर्मष्वती वेदिका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी
पूर्णाः पुण्यजलैः समुद्र–सहिताः कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।।
हिमालयः सुरालयस्तथा च शङ्करालयो
महेन्द्र–विन्ध्य–ऋष्य–मूक–कूट–मन्दरादयः।
सुवेल–गन्धमादनोदयाद्रि–भूधराश्च ये
दिने दिन प्रतिक्षणं भवन्तु मङ्गलाय वः।।

इसके साथ किसी अनुष्ठान या किसी ऐसे अन्य आयोजन के अन्त में शान्ति पाठ किया जाता है जिसमें यह कामना की जाती है कि पर्यावरण विकार मुक्त हो :

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं– शान्तिः–पृथिवी शान्तिरापः– शान्तिरोषधयः शान्ति–।।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वंशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः। (यजु. 36. 17)

(द्यु लोक (ब्रह्माण्ड) शान्तियुक्त (विकार मुक्त) हो, अन्तरिक्ष शान्ति–युक्त (विकार मुक्त हो),जल शांति–युक्त (विकार मुक्त) हो, औषधियां शांतियुक्त (प्रभावकारी) हों, वनस्पतियां शान्तियुक्त (गुणकारी हो), विश्व के देवगण शान्तिदायी (श्रेष्ठता उपबन्ध कराने वाले हों), ब्रह्म (बुद्धिजीवी गण) शान्ति युक्त (विद्या पारंगत) हों, विश्व शांति भी शांति–युक्त (सम्पूर्णता से) हो, सभी (चराचर) शान्ति–युक्त (अपने समुचित स्वरूप को प्राप्त करने वाले) हों, सभी वस्तुएं शान्ति (संतोष एवं प्रसन्नतादायक) हों।)

प्राणिमात्र के प्रति दया रखना भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण पहचान है।

शतपथ ब्राह्मण कथन हैः

ऋण ह वै जायते योऽस्ति। स जायमानएव
देवेभ्यः ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः।।

(इस संसार में जो जन्म लेता है वह जन्म से कतिपय ऋणों को लेकर जन्म लेता है। वे ऋण चार प्रकार के हैं, देवताओं के प्रति ऋण, ऋषियों के प्रति ऋण, पितरों के प्रति ऋण और मनुष्यों के प्रति ऋण)

मनुष्य को प्राणि मात्र का वाचक माना गया है। अतएव मनुष्य सब प्राणियों का ऋणी होता है और उस ऋण को चुकाना उसका कर्तव्य है। इसलिए समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए कार्य करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

गीता सम्पूर्ण प्राणियों के हित में लगे रहने को ब्रह्म प्राप्ति का साधन मानती है।

यह कहा गया है:

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीण कल्मषाः।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः।। 5–25।।

(श्री कृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन ऐसे मनुष्य जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं तथा जिनका संशय ज्ञान प्राप्त करके निवृत्त हो गया है और सम्पूर्ण प्राणियों के हित में जिनकी रति है (अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों के हित में जो लगे हुए हैं) ऐसे पुरुष ही परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।)

विश्व की प्रथम काव्य रचना में महर्षि बाल्मीकि का निम्नलिखित श्लोक ज्ञातव्य है :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमबधीः काममोहितम्।। 1,2,15।।

(बाल्मीकि ने कहा) निषाद! तुझे नित्य निरन्तर– कभी भी शांति न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से एक की जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के हत्या कर डाली।

उपर्युक्त वचन प्राणियों के प्रति करुणा और दया की भवना से उद्भूत हुआ। भारत के दो धर्मों–जैन एवं बौद्ध का मुख्य तत्त्व प्राणि मात्र के प्रति दया और करुणा की भावना है।

इस प्रकार प्राणि मात्र के प्रति दया का भाव भारत में आदि काल से धर्म का एक अंग रहा है।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण के संरक्षण, जल तथा वायु प्रदूषण को रोकने और वन्य जीवन के संरक्षण के लिए संसद् द्वारा पारित अधिनियम भी है। पर्यावरण की रक्षा के लिए "पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986" पारित किया गया है इसके साथ ही "जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974," "वायु (प्रदूषण निवारण नियंत्रण) अधिनियम,1981" भी है। वन्य जीवन के संरक्षण के लिए वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 है। इनका यहाँ संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है।

जैसा ऊपर कहा गया है, पर्यावरण के संरक्षण के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम है। उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है :–

'संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में जो जून, 1972 में स्टॉकहोम में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाए जाएं:

यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहाँ तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए :'

अधिनियम केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए उपाय करने की शक्ति प्रदान करता है। इस संबंध में अधिकारियों के नियुक्त करने का उपबंध किया गया है और उनकी शक्तियां और कृत्यों को विहित किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन हेतु उपबंधों में उद्योग चलाने वाले व्यक्तियों द्वारा मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उर्त्सजन या निस्सारण न होने देना, परिसंकटमय पदार्थों को हथालने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया संबधी रक्षोपायों का पालन किया जाना, कुछ मामलों में प्राधिकरणों और अधिकरणों को जानकारी दिया जाना, प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियों, नमूने लेने की शक्ति और

उसके संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित करना, सरकारी विश्लेषक नियुक्त करने की शक्ति आदि है। इसके साथ अधिनियम तथा तदधीन विरचित या जारी नियमों, आदेशों और निर्देशों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति विहित की गई है तथा इस संबंध में कतिपय प्रक्रिया भी अधिकथित की गई है, इस प्रकार अधिनियम पर्यावरण के संरक्षण हेतु आवश्यक उपबंध करता है। जल प्रदूषण रोकने के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 पारित किया गया है।

अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है:

"जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण और जल की स्वास्थ्यप्रदता बनाए रखने या पूर्वावस्था में लाने के लिए, पूर्वोक्त प्रयोजनों को क्रियान्वित करने की दृष्टि से जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्डों की स्थापना के लिए, उनसे सम्बन्धित शक्तियां और कृत्य ऐसे बोर्डों को प्रदत्त और समनुप्रेषित करने के लिए और उनसे संबंधित विषयों के लिए उपबन्ध करने के लिए अधिनियम।"

अधिनियम केन्द्रीय तथा राज्य जल प्रदूषण बोर्ड गठित किए जाने का उपबंध करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त बोर्डों के गठन का भी उपबंध है। केन्द्रीय बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा 16 केन्द्रीय बोर्ड के कृत्यः (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय बोर्ड का मुख्य कृत्य यह होगा कि वह राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों की सरिताओं और कुंओं में सफाई की अभिवृद्धि करे।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी कृत्य की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय बोर्ड निम्नलिखित कृत्यों में सभी या किसी का पालन कर सकेगा, अर्थात् :–

(क) जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण से सम्बद्ध किसी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना:

(ख) राज्य बोर्डों के क्रियाकलापों में समन्वय करना और उनके बीच के विवादों को सुलझाना:

(ग) राज्यों के बोर्डों को तकनीकी सहायता देना और उनका मार्गदर्शन करना, जल प्रदूषण की तथा जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान क्रियान्वित और प्रायोजित करना :

(घ) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के कार्यक्रमों में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की ऐसे निबन्धों और शर्तों पर योजना बनाना और उसे संगठित करना जिन्हें केन्द्रीय बोर्ड विनिर्दिष्ट करे;

(ङ) जलप्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण के बारे में जनसंपर्क के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम बनाना :

{(ङङ) किसी राज्य बोर्ड के ऐसे कृत्यों का पालन करना जो धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन किए गए किसी आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं,}

(च) जल प्रदूषण से और उसके प्रभावी निवारण तथा नियंत्रण के लिए प्रकल्पित उपायों से संबंधित तकनीकी और सांख्यिकीय आँकड़े एकत्र, संकलित और प्रकाशित करना और मल तथा व्यावसायिक बहिःस्राव (discharge) की अभिक्रिया और व्ययन (disposal) से सम्बन्धित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथ प्रदर्शिकाएं तैयार करना और उनसे संबद्ध जानकारी का प्रसार करना;

(छ) संबद्ध राज्य सरकारों के परामर्श से सरिता या कुएं के लिए मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उसे बातिल करना (nullify);

परन्तु जल की क्वालिटी, सरिता या कुएं में बहाव की प्रकृति और ऐसी सरिता या कुएं या सरिताओं या कुंओं के जल के उपयोग की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए एक ही सरिता या कुएं के लिए अथवा विभिन्न सरिताओं या कुओं के लिए विभिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे :

(ज) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसे निष्पादित करना;

(झ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो विहित किए जाएं।

(3) बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का, जिनके अन्तर्गत किसी सरिता या कुएं से जल के नमूनों का अथवा किसी मल या व्यावसायिक बहिःस्राव के नमूनों का विश्लेषण भी है, दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा या उन्हें मान्यता दे सकेगा।

राज्य बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा–17. राज्य बोर्ड के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य बोर्ड के कृत्य निम्नलिखित होंगे–

(क) राज्य में सरिताओं और कुओं के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना :

(ख) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से सम्बद्ध किसी विषय पर राज्य सरकार को सलाह देनाः

(ग) जल प्रदूषण और उसके निवारण, नियंत्रण या उपशमन से संबंधित जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करनाः

(घ) जल प्रदूषण तथा जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान को बढ़ावा देना, उनका संचालन करना और उसमें भाग लेना :

(ङ) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने में केन्द्रीय बोर्ड के साथ सहयोग करना और उससे संबंधित सार्वजनिक शिक्षा के कार्यक्रम बनाना;

(च) मल या व्यावसायिक बहिःस्राव का, मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया के लिए संकर्म आौर संयंत्रों का निरीक्षण करना और जल की अभिक्रिया के लिए स्थापित संयंत्रों (plants) से, उसके शुद्ध करने के लिए, संकर्मो से और मल या व्यावयायिक बहिःस्राव के व्ययन की पद्धति से, या इस अधिनियम द्वारा अपेक्षित कोई सम्मति प्रदान करने से सम्बन्धित योजनाओं, विनिर्देशों या अन्य आँकड़ों की समीक्षा करना;

(छ) मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के लिए बहिःस्राव के निस्सरण के परिणामस्वरूप प्राप्त हो रहे जल की (जो अन्तर्राज्यिक सरिता का जल न हो) क्वालिटी के लिए बहिःस्राव मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उन्हें बातिल करना (nullify) और राज्य के जल का वर्गीकरण करना;

(ज) विभिन्न क्षेत्रों की मृदा, जलवायु और जलस्रोतों की विशेष दशाओं का और विशेष रूप से सरिताओं और कुओं में जल बहाव की विद्यमान प्रकृति का, जिसके कारण तनुकरण की न्यूनतम डिग्री भी संभव नहीं है, ध्यान रखते हुए मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया की मितव्ययी और विश्वसनीय पद्धतियां निकालना;

(झ) कृषि में मल और उपयुक्त व्यावसायिक बहिःस्राव के उपयोग की पद्धतियां विकसित करना;

(ञ) भूमि पर ऐसे मल और व्यावसायिक बहिःस्रावों के व्ययन की दक्ष पद्धतियां विकसित करना जो सरिता के क्षीण बहाव के कारण तनुकरण की न्यूनतम डिग्री वर्ष के अधिकतर भाग में नहीं हो सकती है, व्ययन के लिए दक्ष पद्धतियां विकसित करना;

(ट) किसी सरिता में, अच्छे मौसम में, न्यूनतम तनुकरण को और ऐसे बहिःस्राव के निस्सरण के पश्चात् उस सरिता के जल में अनुज्ञेय प्रदूषण की सहन सीमा को ध्यान में रखते हुए किसी विशेष सरिता में निस्सरित किए जाने वाले मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया के मानक (standard) अधिकथित करना;

(ठ) निम्नलिखित के लिए आदेश करना, उसमें उपान्तरण करना या उसे वापस लेना;

(1) सरिताओं या कुओं में अपशिष्ट (waste) के निस्सरण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए आदेश,

(2) संपृक्त व्यक्ति से मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के व्ययन की नई पद्धतियों का निर्माण करने की या किसी विद्यमान पद्धति में उपान्तरण, परिवर्तन या विस्तार करने की या रोकथाम के ऐसे उपाय अपनाने की जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए आवश्यक उपचार करने की अपेक्षा करने वाला आदेश,

(ड) मल या कचड़ा या दोनों का निस्सरण कराते समय व्यक्तियों द्वारा अनुपालन किए जाने वाले बहिःस्रावों के मानक अधिकथित करना और मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के लिए मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उन्हें बातिल करना;

(ढ) राज्य सरकार को किसी ऐसे उद्योग के अवस्थान के बारे में सलाह देना, जिसके चलाए जाने से किसी सरिता या कुएं का प्रदूषण संभाव्य हैः

(ण) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो केन्द्रीय बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं या उसे समय समय पर सौंपे जाएं।

(2) बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का, जिनके अन्तर्गत किसी सरिता या कुएं से जल के नमूने का अथवा किसी मल वा व्यावसायिक बहिःस्रावों के नमूने का विश्लेषण भी है, दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा या उन्हें मान्यता दे सकेगा।

बोर्ड द्वारा जारी किए गए आदेशों अथवा निर्देशों का पालन न करने पर शास्ति का उपबंध किया गया है। इसी प्रकार अधिनियम की कतिपय धाराओं के उपबंधों का उल्लंघन करने पर भी शास्ति (penalty) का उपबंध है।

यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कार्य न करने पर सरकार के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया जा सकता है। इस प्रकार जल प्रदूषण को रोकने का प्रावधान किया गया है।

वायु प्रदूषण रोकने के लिए वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 पारित किया गया है।

उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है :

"वायु प्रदूषण के निवारण तथा नियन्त्रण और उपशमन के लिए और पूर्वोक्त प्रयोजनों को क्रियान्वित करने की दृष्टि से बोर्डों की स्थापना के लिए, उनसे संबंधित शक्तियां और कृत्य ऐसे बोर्डों को, प्रवृत्त और समनुदेशित करने के लिए और उनसे संबंधित विषयों का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम"

जून, 1972 में स्टॉकहोम में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन में, जिसमें भारत ने भी भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया कि पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने के लिए, जिनमें अन्य बातों के साथ–साथ वायु की क्वालिटी बनाए रखना और उसके प्रदूषण पर नियंत्रण रखना सम्मिलित है, समुचित कदम उठाए जाएं :

यह आवश्यक समझा गया कि उक्त विनिश्चयों को, जहाँ तक कि उनका संबंध वायु की क्वालिटी बनाए रखने और उसके प्रदूषण पर नियंत्रण रखने से है, कार्यान्वित किया जाए :

इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय वायु प्रदूषण तथा नियंत्रण बोर्ड गठित करने का उपबंध किया गया है। राज्यों के बारे में यह उपबंध किया गया है कि राज्य जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड राज्य वायु प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड हो जाएंगे। जिन राज्यों में जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड नहीं हैं वहां राज्य सरकार वायु प्रदूषण निवारण और नियंत्रण बोर्ड गठित करेगी।

केन्द्रीय बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा–16 केन्द्रीय बोर्ड के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए और जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 (1974 का 6) के अधीन अपने कृत्यों के पालन पर

प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना केन्द्रीय बोर्ड के मुख्य कृत्य यह होंगे कि वह देश में वायु की क्वालिटी में सुधार लाए और वायु प्रदूषण का निवारण करे : उन पर नियंत्रण करे तथा उसका उपशमन करे।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी कृत्यों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय बोर्ड–

(क) वायु की क्वालिटी में सुधार लाने और उसके प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से सम्बद्ध किसी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह दे सकेगा,

(ख) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बना सकेगा और उसे निष्पादित करा सकेगा,

(ग) राज्य बोर्डों के क्रियाकलापों में समन्वय स्थापित कर सकेगा और उनके बीच के विवादों को सुलझा सकेगा,

(घ) राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता दे सकेगा और उनका मार्गदर्शन कर सकेगा, वायु प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्या से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान क्रियान्वित और प्रायोजित कर सकेगा;

{(घघ) किसी राज्य बोर्ड के ऐसे कृत्यों का पालन कर सकेगा जो धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं};

(ङ) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के कार्यक्रमों में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए ऐसे निबंधनों और शर्तों पर योजना बना सकेगा और उसे संगठित कर सकेगा जो केन्द्रीय बोर्ड विनिर्दिष्ट करे;

(च) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के बारे में जन–संपर्क के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम आयोजित कर सकेगा;

(छ) वायु प्रदूषण से और उसके प्रभावी निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए परिकल्पित उपायों से सम्बन्धित तकनीकी और सांख्यिकीय आँकड़े एकत्र, संकलित और प्रकाशित कर सकेगा और वायु के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन सम्बन्धी निर्देशिकाएं, संहिताएं या मार्ग निर्देशिकाएं तैयार कर सकेगा;

(ज) वायु की क्वालिटी के लिए मानक अधिकथित कर सकेगा;

(झ) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित विषयों के बारे में जानकारी एकत्र कर सकेगा और उसका प्रचार कर सकेगा;

(ञ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन कर सकेगा जो विहित किए जाएं।

(3) केन्द्रीय बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा और उन्हें मान्यता दे सकेगा।

राज्य बोर्डों के निम्नलिखित कृत्य हैं:–

धारा 17 राज्य बोंर्डों के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबंधो के अधीन रहते हुए और जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 (1974 का 6) के अधीन अपने कृत्यों पर, यदि कोई हैं, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्यबोर्ड के कृत्य निम्नलिखित होंगे, अर्थात्–

(क) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना;

(ख) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए किसी विषय पर राज्य सरकार को सलाह देना;

(ग) वायु प्रदूषण से संबंधित जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना;

(घ) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण उपशमन से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने में केन्द्रीय बोर्ड के साथ सहयोग करना और उससे सम्बन्धित सार्वजनिक शिक्षा के कार्यक्रम बनाना;

(ङ) किसी नियंत्रण उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र या विनिर्माण प्रक्रिया का सभी युक्तियुक्त समयों पर निरीक्षण करना और वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए कार्यवाही करने की बाबत ऐसे व्यक्तियों को, आदेश द्वारा ऐसे निदेश देना जैसे वह आवश्यक समझें;

(च) वायु प्रदूषण के नियंत्रण क्षेत्रों का ऐसे अंतरालों पर, जो वह आवश्यक समझे, निरीक्षण करना, वायु की क्वालिटी का निर्धारण करना और ऐसे क्षेत्रों में वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए उपाय करना;

(छ) केन्द्रीय बोर्ड के परामर्श से और केन्द्रीय बोर्ड द्वारा वायु की क्वालिटी के बारे में अधिकथित मानकों को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक संयंत्रों तथा आटोमोबाइल से वायुमंडल में वायु प्रदूषण के उत्सर्जन के लिए मानक अधिकथित करना या किसी पोत या किसी वायुयान से भिन्न किसी भी अन्य स्रोत से वायुमंडल में किसी वायु प्रदूषक के उत्सर्जन के लिए कोई मानक अधिकथित करनाः

परन्तु ऐसे औद्योगिक संयंत्रों से वायुमंडल में वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन के परिणाम और सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए, भिन्न–भिन्न औद्योगिक संयंत्रों से होने वाले उत्सर्जन के लिए इस खंड के अधीन भिन्न–भिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे;

(ज) राज्य सरकार के ऐसे किसी उद्योग को जिसमें वायु प्रदूषण होना संभाव्य है, चलाने के लिए किसी परिसर या अवस्थान की उपयुक्तता के संबंध में सलाह देना;

(झ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो केन्द्रीय बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं या उसे समय–समय पर सौंपे जाएं;

(ञ) ऐसी अन्य बातें और ऐसे अन्य कार्य करना जो वह अपने कृत्यों के उचित पालन के लिए और साधारणतया इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक समझे।

(2) राज्य बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा और उन्हें मान्यता दे सकेगा।

बोर्ड के निदेशों का पालन करने में असफल रहने पर शास्ति का उपबंध किया गया है। उसी प्रकार कुछ कार्यों के लिए और अधिनियम के कतिपय उपबंधों के उल्लंघन के लिए भी शस्तियों का उपबंध है।

अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों को करने में सरकार द्वारा असफल रहने पर सरकार के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया जा सकता है।

इस प्रकार अधिनियम द्वारा वायु प्रदूषण को रोकने का प्रावधान किया गया है। **वन्य प्राणियों आदि के संरक्षण के लिए वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम,1972 पारित किया गया है।**

अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है–

"(वन्य प्राणियों, पक्षियों और पादपों) के संरक्षण के लिए तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक या प्रासंगिक सभी विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम।"

अधिनियम अपने अधीन नियुक्त या गठित किए जाने वाले प्राधिकरणों के लिए उपबंध करता है। इसके अधीन वन्य प्राणियों के सामान्य रूप से शिकार का प्रतिषेध किया गया है। अधिनियम में विर्निदिष्ट पादपों के संरक्षण का अभयारण्य, राष्ट्रीय उपवन और आखेट के लिए निषिद्ध क्षेत्र की घोषणा, केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण के गठन और चिड़ियाघरों की मान्यता, वन्य प्राणियों, प्राणी वस्तुओं तथा ट्राफियों का व्यापार या वाणिज्य आदि के बारे में घोषणाएं, कुछ प्राणियों से व्युत्पन्न ट्राफी, प्राणी वस्तुओं आदि में

व्यापार या वाणिज्य का प्रतिषेध तथा अपराधों का निवारण तथा पता लगाने आदि के बारे में उपबंध करता है।

इस प्रकार अधिनियम वन्य जीवों के जिसमें वन्य जीवों के साथ पादप भी हैं, संरक्षण का प्रावधान करता है।

यह ज्ञातव्य है कि पर्यावरण संरक्षण और जल और वायु को प्रदूषण मुक्त रखने के बारे में उपर्युक्त विधिक उपबंधों के अतिरिक्त ये संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा उसका अर्थान्वयन किया गया है, एक मूल अधिकार भी है। उक्त संवैधानिक उपबंध और अधिनियमों के अधीन बहुत से वादों में न्यायालयों ने उन्हें लागू किया है। तथापि विवेचनाधीन मूल कर्तव्य को लागू करते हुए भी उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक निर्णय दिए गए हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है। न्यायालय ने यह भी कहा है कि इस कर्तव्य को लागू करना न्यायालय का कर्तव्य है।

"जहाँ न्यायालय से यह अपेक्षा की गई है कि वह राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों और अनुच्छेद 51क (छ) में अन्तर्विष्ट कर्तव्य को प्रभावी करे वहाँ न्यायालय यह कहकर अपना पल्ला नहीं झाड़ सकता कि प्राथमिकताएं नीति की विषय है और नीति निर्धारक प्राधिकारियों का विषय है [1]।"

एक निर्णय में जहाँ पर्यावरण को क्षति पहुँचाए जाने के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया गया था, न्यायालय ने कहा :

"पर्याप्त सुरक्षा का प्रावधान और उसे सुनिश्चित किए बिना खान के विस्फोटक कार्य पर लगाई गई पाबन्दी में नरमी पर्यावरण, पारिस्थितिकी और उस क्षेत्र के वासियों को अपूरणीय नुकसान और क्षति पहुँचाएगी [2]"।

एक अन्य मामले में कहा गया :

"जंगल के बीच स्थित किसी खान के खनन कार्रवाई को रोकना संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) के अनुपालन में है [3]।"

पुनः एक दूसरे मामले मे कहा गया :

"जहाँ खानों में अंधाधुंध कारवाई प्राकृतिक सम्पदा और पर्यावरण को खतरनाक साबित होती है वहाँ अनुच्छेद 51क (छ) में अन्तर्विष्ट सांविधानिक लक्ष्य की पूर्ति हेतु न्यायालय के पास समुचित रिट, आदेश जिसमें खान को बंद करने के लिए निदेश सम्मिलित है, के द्वारा हस्तक्षेप करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।" [4]

एक अन्य मामले में कहा गया :

"फैक्टरी से आम सड़क पर मल निःस्राव और या किसी निकास प्रणाली में उसे फेंकना अनुच्छेद 51क (छ) के प्रावधानों के विरुद्ध है और आम जनता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है।" [5]

एक मामले में जहाँ नागरिकों को पानी की उचित आपूर्ति न मिलने के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया गया था, न्यायालय ने कहाः

"जहाँ एक राज्य के नागरिकों को पानी की कमी का सामना करना पड़ा और परिणामस्वरूप उन्होंने सम्बन्धित कानूनी निकायों के विरुद्ध एक रिट पिटीशन फाइल किया तो पक्षकारों द्वारा जल के संरक्षण के बारे में किसी सुझाव के अभाव में न्यायालय ने आम जनता के हित में प्राधिकारियों द्वारा कार्रवाई का अपना सुझाव रखा जिससे यथासंभव पीने के लिए पानी उपलब्ध हो और उसे नगर की जनसंख्या के बीच समान रूप से वितरित किया जाए [1]।"

जहाँ वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम में एक संशोधन को शक्ति वाह्य कह कर उसे चुनौती दी गई थी उच्चतम न्यायालय ने यह अधिनिर्धारित कियाः कि वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 (यथासंशोधन अधिनियम, 1991 द्वारा संशोधित) की धारा 49 (ग) में आयातित हाथी दांत के संव्यवहार का प्रतिषेध संविधान के शक्ति वाह्य नहीं है। यह व्यापार परिस्थितिकी के लिए खतरनाक है। यह प्रतिषेध अप्रत्यक्ष

रूप से भारतीय हाथी की संरक्षा के लिए है और उनकी गिरती हुई संख्या को रोकने के लिए संशोधनों को संविधान के अनुच्छेद 48 (क) और 51क (छ) को दृष्टि में रखकर लागू किया जाना है [2]।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण के संरक्षण एवं जल तथा वायु प्रदूषण को रोकने एवं वन्य जीवन के संरक्षण हेतु अधिनियमों के होने के बावजूद भी वे पर्याप्त रूप से प्रभावी नहीं हो रहे हैं। वस्तुतः इस संबंध में देश के प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों के प्रचार एवं उनके प्रति नागरिकों में आस्था उत्पन्न करके इसका पालन सुगम बनाया जा सकता है।अध्याय – 12

पर्यावरण की रक्षा

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) में निम्नलिखित रूप में कथित हैः "प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करना और उनका संवर्धन करना तथा प्राणि मात्र के प्रति दया भाव रखना"

इस कर्तव्य के बारे में लोक सभा के सदस्य श्री शंकर दयाल सिंह ने एक संशोधन पेश किया था, जो निम्नलिखित हैः

"इसके बाद (छ) के अंदर मैंने नदी और वन्य जीवों के साथ–साथ पक्षियों की भी चर्चा की है। मैंने यह कहा है कि आप नदी और अन्य वन्य जीवों के साथ पक्षियों को भी जोड़ दीजिए। वह इसलिए कि जब मयूर को आप ने राष्ट्रीय पक्षी मान लिया और घोषित भी किया है तो कुछ ऐसे पक्षी भी हैं जिनके वंश आज लुप्त होते जा रहे हैं। संसार के कई बेचारे चहचहाते हुए पक्षी जिनकी जबान हम चुरा लेते हैं, कभी–कभी जिन्हें हम पिंजरे में बंद करके मनोरंजित होते हैं, ऐसे पक्षियों का भी जिक्र उसमें होना चाहिए और उनकी भी रक्षा होनी चाहिए[1]।

यद्यपि उक्त संशोधन स्वीकार नहीं किया गया तथापि वस्तुतः वन्य जीवन में पक्षी भी आएंगे, कम से कम वन में रहने वाले पक्षी।

आधुनिक काल में पर्यावरण की रक्षा एक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का विषय हो गया है। पर्यावरण की रक्षा मनुष्य के जीवन के लिए बहुत आवश्यक है। औद्योगीकरण, शहरीकरण एंव व्यावसायिकता ने इस पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव डाला है। इसकी रक्षा के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर अनेक यत्न किए जा रहे हैं। वस्तुतः राष्ट्रों द्वारा किए जाने वाले प्रयत्नों के साथ इसके लिए नागरिकों या व्यक्तियों की कटिबद्धता भी आवश्यक है। पर्यावरण की रक्षा को इसलिए नागरिकों का एक मूल कर्तव्य बनाया गया है।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण की रक्षा भारतीय परम्परा का एक अभिन्न अंग है। इसके महत्त्व को देखते हुए इसे धर्म के अंग के रूप में माना गया था। प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा का एक मुख्य अंग वनस्पति जगत की रक्षा और उसका सम्वर्द्धन है। **प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार वृक्ष लगाना एक पुण्य कार्य माना जाता है और वृक्षों को काटना पाप कर्म।** प्रत्येक गांव में बगीचे, विशेष रूप से आम के बगीचे पाए जाते है। उत्तर भारत (विशेष रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार) में कहीं कहीं पर समर्थ लोग मनौती या मन्नत के रूप में संकल्प लेकर आम के लाख वृक्ष लगाते थे जिसे लखराँव (लक्षाम्र) कहा जाता हैं। अब भी ऐसे अनेक लखराँव विद्यमान हैं। **यह उल्लेखनीय है कि आम का फल राष्ट्रीय फल है।** आम के बगीचे लगाने पर उसमें से दो श्रेष्ठ किस्म के आम के वृक्षों को चुनकर उन्हें राजा रानी अभिधान से सम्बोधित किया जाता था और उनका शास्त्रीय पद्धति से विवाह किया जाता था। **स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी वृक्षों को देवता स्वरूप या देवताओं के वास स्थान के रूप में पवित्र और रक्षा योग्य माना गया है जैसे नीम, पीपल, तुलसी आदि और उनकी पूजा की जाती है।**

जल को भारतीय संस्कृति में सदा से पूजनीय माना गया है। आर्यों में आदिकाल से मान्य देवताओं में वरुण का विशेष स्थान है जो जल के देवता हैं। जल के पर्यायवाची शब्दों की संख्या में ज्ञात होगा कि जल को भारतीय संस्कृति में कितना महत्त्व दिया गाया है। जल को पानी, नीर, तोय, वारि, पय, सलिल, उदक आदि नामों से जाना जाता है। उसका एक नाम जीवन भी है। गृह कार्यों में पूजा कार्यों आदि में वह एक मुख्य उपादान है। पूजा–पाठ, नदी–पोखरों तालाब या झील के तट पर करना विशेष फलदायक माना जाता है।

उसी प्रकार **भारतीय संस्कृति में नदियों को विशेष महत्त्व दिया गया है** उनमें देवत्व का आरोपण किया गया है। गंगा को पवित्र माना जाता है और अनेक नदियों के जल को भी उसी प्रकार माना गया है। विशेष पर्वों पर पवित्र नदियों में स्नान करना आध्यात्मिक फल देने वाला माना जाता है। हिन्दुओं में दाह संस्कार सामान्यतया नदी के तट पर किए जाते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक जल से निकटता रखी जाती है।

वनों का भी भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है। वन में भी देवता की कल्पना की गई है और उक्त देवता को वन देवता कहा जाता है। कहा जाता है कि गया में छह वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात् सिद्धार्थ गौतम को सुजाता ने वन देवता समझकर खीर खिलाई थी। वन आध्यात्मिक जीवन और चिन्तन के स्थान माने जाते थे। ऋषियों, मुनियों के आश्रम वनों में होते थे। यहाँ गुरु शिष्यों को शिक्षा देता था। महाकवि **कालिदास ने 'रघुवंश' में लिखा है कि "वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां।"** (रघुकुल के राजा वृद्धावस्था में मुनि वृत्ति ग्रहण कर लेते थे– अर्थात् वन में जाकर निवास करते थे)। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि 'चौथे पन नृप कानन जाहीं' (चौथेपन अर्थात् वृद्धावस्था में राजा वन में चले जाते थे)। यह ज्ञातव्य है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् धृतराष्ट्र आदि वन में चले गए थे। वन की रक्षा करना राजा का कर्तव्य था। तथापि वन राजा के राज्य के बाहर माना जाता था, अर्थात् वहाँ उसका आधिपत्य नहीं होता था। आश्रम स्वाध्याय के एक स्वायत्त या स्वशासी संस्था के रूप में कार्य करते थे। इस प्रकार वनों के महत्त्व और उनको दिए गए संरक्षण को भारतीय संस्कृति में विशेष स्थान प्राप्त है।

हिन्दुओं के संस्कारों में विशेषतः विवाह के अवसर पर देश के पूर्व महापुरुषों का नाम स्मरण करने के साथ ही नदी पर्वत वृक्षों, नदियों आदि का स्मरण कर उनके द्वारा मंगल किए जाने की कामना की जाती है।

इसे निम्नलिखित उदाहरण से देखा जा सकता हैः–

अश्वत्थो वटवृक्ष–चन्दन–तरुर्मन्दार–कल्पद्रुमौ
जम्बू–निम्ब कदम्ब–चूत–सरला वृक्षाश्च ये क्षीरिणः।
सर्वे ते फलसंयुताः प्रतिदिन विभ्राजनं राजते
रम्यं चैत्ररथं च नन्दनवनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।
गङ्गा सिन्धु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कावेरी सरयू महेन्द्रतनया चर्मष्वती वेदिका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी
पूर्णाः पुण्यजलैः समुद्र–सहिताः कुर्वन्तु नो मङ्गलम्।।
हिमालयः सुरालयस्तथा च शङ्करालयो
महेन्द्र–विन्ध्य–ऋष्य–मूक–कूट–मन्दरादयः।
सुवेल–गन्धमादनोदयाद्रि–भूधराश्च ये
दिने दिन प्रतिक्षणं भवन्तु मङ्गलाय वः।।

इसके साथ किसी अनुष्ठान या किसी ऐसे अन्य आयोजन के अन्त में शान्ति पाठ किया जाता है जिसमें यह कामना की जाती है कि पर्यावरण विकार मुक्त हो :

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं– शान्तिः–पृथिवी शान्तिरापः– शान्तिरोषधयः शान्ति–।।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वंशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः। (यजु. 36. 17)

(द्यु लोक (ब्रह्माण्ड) शान्तियुक्त (विकार मुक्त) हो, अन्तरिक्ष शान्ति–युक्त (विकार मुक्त हो),जल शांति–युक्त (विकार मुक्त) हो, औषधियां शांतियुक्त (प्रभावकारी) हों, वनस्पतियां शान्तियुक्त (गुणकारी हो), विश्व के देवगण शान्तिदायी (श्रेष्ठता उपबन्ध कराने वाले हों), ब्रह्म (बुद्धिजीवी गण) शान्ति युक्त (विद्या पारंगत) हों, विश्व शांति भी शांति–युक्त (सम्पूर्णता से) हो, सभी (चराचर) शान्ति–युक्त (अपने समुचित स्वरूप को प्राप्त करने वाले) हों, सभी वस्तुएं शान्ति (संतोष एवं प्रसन्नतादायक) हों।)

प्राणिमात्र के प्रति दया रखना भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण पहचान है।

शतपथ ब्राह्मण कथन है:

ऋण ह वै जायते योऽस्ति। स जायमानएव

देवेभ्यः ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः।।

(इस संसार में जो जन्म लेता है वह जन्म से कतिपय ऋणों को लेकर जन्म लेता है। वे ऋण चार प्रकार के हैं, देवताओं के प्रति ऋण, ऋषियों के प्रति ऋण, पितरों के प्रति ऋण और मनुष्यों के प्रति ऋण)

मनुष्य को प्राणि मात्र का वाचक माना गया है। अतएव मनुष्य सब प्राणियों का ऋणी होता है और उस ऋण को चुकाना उसका कर्तव्य है। इसलिए समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए कार्य करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

गीता सम्पूर्ण प्राणियों के हित में लगे रहने को ब्रह्म प्राप्ति का साधन मानती है।

यह कहा गया है:

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीण कल्मषाः।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः।। 5–25।।

(श्री कृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन ऐसे मनुष्य जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं तथा जिनका संशय ज्ञान प्राप्त करके निवृत्त हो गया है और सम्पूर्ण प्राणियों के हित में जिनकी रति है (अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों के हित में जो लगे हुए हैं) ऐसे पुरुष ही परब्रह्म को प्राप्त होते हैं।)

विश्व की प्रथम काव्य रचना में महर्षि बाल्मीकि का निम्नलिखित श्लोक ज्ञातव्य है :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमबधीः काममोहितम्।। 1,2,15।।

(बाल्मीकि ने कहा) निषाद! तुझे नित्य निरन्तर– कभी भी शांति न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोड़े में से एक की जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के हत्या कर डाली।

उपर्युक्त वचन प्राणियों के प्रति करुणा और दया की भवना से उद्भूत हुआ। भारत के दो धर्मों–जैन एवं बौद्ध का मुख्य तत्त्व प्राणि मात्र के प्रति दया और करुणा की भावना है।

इस प्रकार प्राणि मात्र के प्रति दया का भाव भारत में आदि काल से धर्म का एक अंग रहा है।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण के संरक्षण, जल तथा वायु प्रदूषण को रोकने और वन्य जीवन के संरक्षण के लिए संसद् द्वारा पारित अधिनियम भी है। पर्यावरण की रक्षा के लिए "पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986" पारित किया गया है इसके साथ ही "जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974," "वायु (प्रदूषण निवारण नियंत्रण) अधिनियम,1981" भी है। वन्य जीवन के संरक्षण के लिए वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 है। इनका यहाँ संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है।

जैसा ऊपर कहा गया है, पर्यावरण के संरक्षण के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम है। उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है :–

'संयुक्त राष्ट्र के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन में जो जून, 1972 में स्टॉकहोम में हुआ था और जिसमें भारत ने भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया था कि मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए समुचित कदम उठाए जाएं:

यह आवश्यक समझा गया है कि पूर्वोक्त निर्णयों को, जहाँ तक उनका संबंध पर्यावरण संरक्षण और सुधार से तथा मानवों, अन्य जीवित प्राणियों, पादपों और संपत्ति को होने वाले परिसंकट के निवारण से है, लागू किया जाए :'

अधिनियम केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए उपाय करने की शक्ति प्रदान करता है। इस संबंध में अधिकारियों के नियुक्त करने का उपबंध किया गया है और उनकी शक्तियां और कृत्यों को विहित किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन हेतु उपबंधों में उद्योग चलाने वाले व्यक्तियों द्वारा मानकों से अधिक पर्यावरण प्रदूषकों का उत्सर्जन या निस्सारण न होने देना, परिसंकटमय पदार्थों को हथालने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया संबधी रक्षोपायों का पालन किया जाना, कुछ मामलों में प्राधिकरणों और अधिकरणों को जानकारी दिया जाना, प्रवेश और निरीक्षण की शक्तियों, नमूने लेने की शक्ति और उसके संबंध में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित करना, सरकारी विश्लेषक नियुक्त करने की शक्ति आदि है। इसके साथ अधिनियम तथा तदधीन विरचित या जारी नियमों, आदेशों और निर्देशों के उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति विहित की गई है तथा इस संबंध में कतिपय प्रक्रिया भी अधिकथित की गई है, इस प्रकार अधिनियम पर्यावरण के संरक्षण हेतु आवश्यक उपबंध करता है। जल प्रदूषण रोकने के लिए जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 पारित किया गया है।

अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया हैः

"जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण और जल की स्वास्थ्यप्रदता बनाए रखने या पूर्वावस्था में लाने के लिए, पूर्वोक्त प्रयोजनों को क्रियान्वित करने की दृष्टि से जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्डों की स्थापना के लिए, उनसे सम्बन्धित शक्तियां और कृत्य ऐसे बोर्डों को प्रदत्त और समनुप्रेषित करने के लिए और उनसे संबंधित विषयों के लिए उपबन्ध करने के लिए अधिनियम।"

अधिनियम केन्द्रीय तथा राज्य जल प्रदूषण बोर्ड गठित किए जाने का उपबंध करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त बोर्डों के गठन का भी उपबंध है। केन्द्रीय बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा 16 केन्द्रीय बोर्ड के कृत्यः (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय बोर्ड का मुख्य कृत्य यह होगा कि वह राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों की सरिताओं और कुंओं में सफाई की अभिवृद्धि करे।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी कृत्य की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय बोर्ड निम्नलिखित कृत्यों में सभी या किसी का पालन कर सकेगा, अर्थात् :–

(क) जल प्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण से सम्बद्ध किसी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देनाः

(ख) राज्य बोर्डों के क्रियाकलापों में समन्वय करना और उनके बीच के विवादों को सुलझानाः

(ग) राज्यों के बोर्डों को तकनीकी सहायता देना और उनका मार्गदर्शन करना, जल प्रदूषण की तथा जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान क्रियान्वित और प्रायोजित करना :

(घ) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के कार्यक्रमों में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की ऐसे निबन्धों और शर्तों पर योजना बनाना और उसे संगठित करना जिन्हें केन्द्रीय बोर्ड विनिर्दिष्ट करे;

(ङ) जलप्रदूषण के निवारण तथा नियंत्रण के बारे में जनसंपर्क के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम बनाना :

{(ङङ) किसी राज्य बोर्ड के ऐसे कृत्यों का पालन करना जो धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन किए गए किसी आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं,}

(च) जल प्रदूषण से और उसके प्रभावी निवारण तथा नियंत्रण के लिए प्रकल्पित उपायों से संबंधित तकनीकी और सांख्यिकीय आँकड़े एकत्र, संकलित और प्रकाशित करना और मल तथा व्यावसायिक बहिःस्राव (discharge) की अभिक्रिया और व्ययन (disposal) से सम्बन्धित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथ प्रदर्शिकाएं तैयार करना और उनसे संबद्ध जानकारी का प्रसार करना;

(छ) संबद्ध राज्य सरकारों के परामर्श से सरिता या कुएं के लिए मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उसे बातिल करना (nullify);

परन्तु जल की क्वालिटी, सरिता या कुएं में बहाव की प्रकृति और ऐसी सरिता या कुएं या सरिताओं या कुंओं के जल के उपयोग की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए एक ही सरिता या कुएं के लिए अथवा विभिन्न सरिताओं या कुओं के लिए विभिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे :

(ज) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसे निष्पादित करना;

(झ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो विहित किए जाएं।

(3) बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का, जिनके अन्तर्गत किसी सरिता या कुएं से जल के नमूनों का अथवा किसी मल या व्यावसायिक बहिःस्राव के नमूनों का विश्लेषण भी है, दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा या उन्हें मान्यता दे सकेगा।

राज्य बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा–17. राज्य बोर्ड के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य बोर्ड के कृत्य निम्नलिखित होंगे–

(क) राज्य में सरिताओं और कुओं के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना :

(ख) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से सम्बद्ध किसी विषय पर राज्य सरकार को सलाह देनाः

(ग) जल प्रदूषण और उसके निवारण, नियंत्रण या उपशमन से संबंधित जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करनाः

(घ) जल प्रदूषण तथा जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान को बढ़ावा देना, उनका संचालन करना और उसमें भाग लेना :

(ङ) जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने में केन्द्रीय बोर्ड के साथ सहयोग करना और उससे संबंधित सार्वजनिक शिक्षा के कार्यक्रम बनाना;

(च) मल या व्यावसायिक बहिःस्राव का, मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया के लिए संकर्म आौर संयंत्रों का निरीक्षण करना और जल की अभिक्रिया के लिए स्थापित संयंत्रों (plants) से, उसके शुद्ध करने के लिए, संकर्मो से और मल या व्यावयायिक बहिःस्राव के व्ययन की पद्धति से, या इस अधिनियम द्वारा अपेक्षित कोई सम्मति प्रदान करने से सम्बन्धित योजनाओं, विनिर्देशों या अन्य आँकड़ों की समीक्षा करना;

(छ) मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के लिए बहिःस्त्राव के निस्सरण के परिणामस्वरूप प्राप्त हो रहे जल की (जो अन्तर्राज्यिक सरिता का जल न हो) क्वालिटी के लिए बहिःस्राव मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उन्हें बातिल करना (nullify) और राज्य के जल का वर्गीकरण करना;

(ज) विभिन्न क्षेत्रों की मृदा, जलवायु और जलस्रोतों की विशेष दशाओं का और विशेष रूप से सरिताओं और कुओं में जल बहाव की विद्यमान प्रकृति का, जिसके कारण तनुकरण की न्यूनतम डिग्री भी संभव नहीं है, ध्यान रखते हुए मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया की मितव्ययी और विश्वसनीय पद्धतियां निकालना;

(झ) कृषि में मल और उपयुक्त व्यावसायिक बहिःस्राव के उपयोग की पद्धतियां विकसित करना;

(ञ) भूमि पर ऐसे मल और व्यावसायिक बहिःस्रावों के व्ययन की दक्ष पद्धतियां विकसित करना जो सरिता के क्षीण बहाव के कारण तनुकरण की न्यूनतम डिग्री वर्ष के अधिकतर भाग में नहीं हो सकती है, व्ययन के लिए दक्ष पद्धतियां विकसित करना;

(ट) किसी सरिता में, अच्छे मौसम में, न्यूनतम तनुकरण को और ऐसे बहिःस्राव के निस्सरण के पश्चात् उस सरिता के जल में अनुज्ञेय प्रदूषण की सहन सीमा को ध्यान में रखते हुए किसी विशेष सरिता में निस्सरित किए जाने वाले मल और व्यावसायिक बहिःस्राव की अभिक्रिया के मानक (standard) अधिकथित करना;

(ठ) निम्नलिखित के लिए आदेश करना, उसमें उपान्तरण करना या उसे वापस लेना;

(1) सरिताओं या कुओं में अपशिष्ट (waste) के निस्सरण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए आदेश,

(2) संपृक्त व्यक्ति से मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के व्ययन की नई पद्धतियों का निर्माण करने की या किसी विद्यमान पद्धति में उपान्तरण, परिवर्तन या विस्तार करने की या रोकथाम के ऐसे उपाय अपनाने की जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए आवश्यक उपचार करने की अपेक्षा करने वाला आदेश,

(ड) मल या कचड़ा या दोनों का निस्सरण कराते समय व्यक्तियों द्वारा अनुपालन किए जाने वाले बहिःस्रावों के मानक अधिकथित करना और मल और व्यावसायिक बहिःस्राव के लिए मानक अधिकथित करना, उनमें उपान्तरण करना या उन्हें बातिल करना;

(ढ) राज्य सरकार को किसी ऐसे उद्योग के अवस्थान के बारे में सलाह देना, जिसके चलाए जाने से किसी सरिता या कुएं का प्रदूषण संभाव्य हैः

(ण) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो केन्द्रीय बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं या उसे समय समय पर सौंपे जाएं।

(2) बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का, जिनके अन्तर्गत किसी सरिता या कुएं से जल के नमूने का अथवा किसी मल वा व्यावसायिक बहिःस्रावों के नमूने का विश्लेषण भी है, दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा या उन्हें मान्यता दे सकेगा।

बोर्ड द्वारा जारी किए गए आदेशों अथवा निर्देशों का पालन न करने पर शास्ति का उपबंध किया गया है। इसी प्रकार अधिनियम की कतिपय धाराओं के उपबंधों का उल्लंघन करने पर भी शास्ति (penalty) का उपबंध है।

यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कार्य न करने पर सरकार के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया जा सकता है। इस प्रकार जल प्रदूषण को रोकने का प्रावधान किया गया है।

वायु प्रदूषण रोकने के लिए वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1981 पारित किया गया है।

उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है :

"वायु प्रदूषण के निवारण तथा नियन्त्रण और उपशमन के लिए और पूर्वोक्त प्रयोजनों को क्रियान्वित करने की दृष्टि से बोर्डों की स्थापना के लिए, उनसे संबंधित शक्तियां और कृत्य ऐसे बोर्डों को, प्रवृत्त और समनुदेशित करने के लिए और उनसे संबंधित विषयों का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम"

जून, 1972 में स्टॉकहोम में मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन में, जिसमें भारत ने भी भाग लिया था, यह विनिश्चय किया गया कि पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को बनाए रखने के लिए, जिनमें अन्य बातों के साथ–साथ वायु की क्वालिटी बनाए रखना और उसके प्रदूषण पर नियंत्रण रखना सम्मिलित है, समुचित कदम उठाए जाएं :

यह आवश्यक समझा गया कि उक्त विनिश्चयों को, जहाँ तक कि उनका संबंध वायु की क्वालिटी बनाए रखने और उसके प्रदूषण पर नियंत्रण रखने से है, कार्यान्वित किया जाए :

इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय वायु प्रदूषण तथा नियंत्रण बोर्ड गठित करने का उपबंध किया गया है। राज्यों के बारे में यह उपबंध किया गया है कि राज्य जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड राज्य वायु प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड हो जाएंगे। जिन राज्यों में जल प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्ड नहीं हैं वहां राज्य सरकार वायु प्रदूषण निवारण और नियंत्रण बोर्ड गठित करेगी।

केन्द्रीय बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य हैं :–

धारा–16 केन्द्रीय बोर्ड के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए और जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 (1974 का 6) के अधीन अपने कृत्यों के पालन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना केन्द्रीय बोर्ड के मुख्य कृत्य यह होंगे कि वह देश में वायु की क्वालिटी में सुधार लाए और वायु प्रदूषण का निवारण करे : उन पर नियंत्रण करे तथा उसका उपशमन करे।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी कृत्यों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय बोर्ड–

(क) वायु की क्वालिटी में सुधार लाने और उसके प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से सम्बद्ध किसी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह दे सकेगा,

(ख) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बना सकेगा और उसे निष्पादित करा सकेगा,

(ग) राज्य बोर्डों के क्रियाकलापों में समन्वय स्थापित कर सकेगा और उनके बीच के विवादों को सुलझा सकेगा,

(घ) राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता दे सकेगा और उनका मार्गदर्शन कर सकेगा, वायु प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्या से सम्बन्धित अन्वेषण और अनुसंधान क्रियान्वित और प्रायोजित कर सकेगा;

{(घघ) किसी राज्य बोर्ड के ऐसे कृत्यों का पालन कर सकेगा जो धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं};

(ङ) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के कार्यक्रमों में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए ऐसे निबंधनों और शर्तों पर योजना बना सकेगा और उसे संगठित कर सकेगा जो केन्द्रीय बोर्ड विनिर्दिष्ट करे;

(च) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के बारे में जन–संपर्क के माध्यम से व्यापक कार्यक्रम आयोजित कर सकेगा;

(छ) वायु प्रदूषण से और उसके प्रभावी निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए परिकल्पित उपायों से सम्बन्धित तकनीकी और सांख्यिकीय आँकड़े एकत्र, संकलित और प्रकाशित कर सकेगा और वायु के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन सम्बन्धी निर्देशिकाएं, संहिताएं या मार्ग निर्देशिकाएं तैयार कर सकेगा;

(ज) वायु की क्वालिटी के लिए मानक अधिकथित कर सकेगा;

(झ) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित विषयों के बारे में जानकारी एकत्र कर सकेगा और उसका प्रचार कर सकेगा;

(ञ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन कर सकेगा जो विहित किए जाएं।

(3) केन्द्रीय बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा और उन्हें मान्यता दे सकेगा।

राज्य बोर्डों के निम्नलिखित कृत्य हैं:–

धारा 17 राज्य बोंर्डों के कृत्य– (1) इस अधिनियम के उपबंधो के अधीन रहते हुए और जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 (1974 का 6) के अधीन अपने कृत्यों पर, यदि कोई हैं, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्यबोर्ड के कृत्य निम्नलिखित होंगे, अर्थात्–

(क) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना;

(ख) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए किसी विषय पर राज्य सरकार को सलाह देना;

(ग) वायु प्रदूषण से संबंधित जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना;

(घ) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण उपशमन से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने में केन्द्रीय बोर्ड के साथ सहयोग करना और उससे सम्बन्धित सार्वजनिक शिक्षा के कार्यक्रम बनाना;

(ङ) किसी नियंत्रण उपस्कर, औद्योगिक संयंत्र या विनिर्माण प्रक्रिया का सभी युक्तियुक्त समयों पर निरीक्षण करना और वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए कार्यवाही करने की बाबत ऐसे व्यक्तियों को, आदेश द्वारा ऐसे निदेश देना जैसे वह आवश्यक समझें;

(च) वायु प्रदूषण के नियंत्रण क्षेत्रों का ऐसे अंतरालों पर, जो वह आवश्यक समझे, निरीक्षण करना, वायु की क्वालिटी का निर्धारण करना और ऐसे क्षेत्रों में वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए उपाय करना;

(छ) केन्द्रीय बोर्ड के परामर्श से और केन्द्रीय बोर्ड द्वारा वायु की क्वालिटी के बारे में अधिकथित मानकों को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक संयंत्रों तथा आटोमोबाइल से वायुमंडल में वायु प्रदूषण के उत्सर्जन के लिए मानक अधिकथित करना या किसी पोत या किसी वायुयान से भिन्न किसी भी अन्य स्रोत से वायुमंडल में किसी वायु प्रदूषक के उत्सर्जन के लिए कोई मानक अधिकथित करनाः

परन्तु ऐसे औद्योगिक संयंत्रों से वायुमंडल में वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन के परिणाम और सम्मिश्रण को ध्यान में रखते हुए, भिन्न–भिन्न औद्योगिक संयंत्रों से होने वाले उत्सर्जन के लिए इस खंड के अधीन भिन्न–भिन्न मानक अधिकथित किए जा सकेंगे;

(ज) राज्य सरकार के ऐसे किसी उद्योग को जिसमें वायु प्रदूषण होना संभाव्य है, चलाने के लिए किसी परिसर या अवस्थान की उपयुक्तता के संबंध में सलाह देना;

(झ) ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो केन्द्रीय बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं या उसे समय–समय पर सौंपे जाएं;

(ञ) ऐसी अन्य बातें और ऐसे अन्य कार्य करना जो वह अपने कृत्यों के उचित पालन के लिए और साधारणतया इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक समझे।

(2) राज्य बोर्ड इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का दक्ष पालन करने के लिए अपने को समर्थ बनाने के लिए एक या अधिक प्रयोगशालाएं स्थापित कर सकेगा और उन्हें मान्यता दे सकेगा।

बोर्ड के निदेशों का पालन करने में असफल रहने पर शास्ति का उपबंध किया गया है। उसी प्रकार कुछ कार्यों के लिए और अधिनियम के कतिपय उपबंधों के उल्लंघन के लिए भी शस्तियों का उपबंध है।

अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों को करने में सरकार द्वारा असफल रहने पर सरकार के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया जा सकता है।

इस प्रकार अधिनियम द्वारा वायु प्रदूषण को रोकने का प्रावधान किया गया है। **वन्य प्राणियों आदि के संरक्षण के लिए वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम,1972 पारित किया गया है।**

अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है–

"(वन्य प्राणियों, पक्षियों और पादपों) के संरक्षण के लिए तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक या प्रासंगिक सभी विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम।"

अधिनियम अपने अधीन नियुक्त या गठित किए जाने वाले प्राधिकरणों के लिए उपबंध करता है। इसके अधीन वन्य प्राणियों के सामान्य रूप से शिकार का प्रतिषेध किया गया है। अधिनियम में विर्निदिष्ट पादपों के संरक्षण का अभयारण्य, राष्ट्रीय उपवन और आखेट के लिए निषिद्ध क्षेत्र की घोषणा, केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण के गठन और चिड़ियाघरों की मान्यता, वन्य प्राणियों, प्राणी वस्तुओं तथा ट्राफियों का व्यापार या वाणिज्य आदि के बारे में घोषणाएं, कुछ प्राणियों से व्युत्पन्न ट्राफी, प्राणी वस्तुओं आदि में व्यापार या वाणिज्य का प्रतिषेध तथा अपराधों का निवारण तथा पता लगाने आदि के बारे में उपबंध करता है।

इस प्रकार अधिनियम वन्य जीवों के जिसमें वन्य जीवों के साथ पादप भी हैं, संरक्षण का प्रावधान करता है।

यह ज्ञातव्य है कि पर्यावरण संरक्षण और जल और वायु को प्रदूषण मुक्त रखने के बारे में उपर्युक्त विधिक उपबंधों के अतिरिक्त ये संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा उसका अर्थान्वयन किया गया है, एक मूल अधिकार भी है। उक्त संवैधानिक उपबंध और अधिनियमों के अधीन बहुत से वादों में न्यायालयों ने उन्हें लागू किया है। तथापि विवेचनाधीन मूल कर्तव्य को लागू करते हुए भी उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक निर्णय दिए गए हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है। न्यायालय ने यह भी कहा है कि इस कर्तव्य को लागू करना न्यायालय का कर्तव्य है।

"जहाँ न्यायालय से यह अपेक्षा की गई है कि वह राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों और अनुच्छेद 51क (छ) में अन्तर्विष्ट कर्तव्य को प्रभावी करे वहाँ न्यायालय यह कहकर अपना पल्ला नहीं झाड़ सकता कि प्राथमिकताएं नीति की विषय है और नीति निर्धारक प्राधिकारियों का विषय है [1]।"

एक निर्णय में जहाँ पर्यावरण को क्षति पहुँचाए जाने के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया गया था, न्यायालय ने कहा :

"पर्याप्त सुरक्षा का प्रावधान और उसे सुनिश्चित किए बिना खान के विस्फोटक कार्य पर लगाई गई पाबन्दी में नरमी पर्यावरण, पारिस्थितिकी और उस क्षेत्र के वासियों को अपूरणीय नुकसान और क्षति पहुँचाएगी [2]"।

एक अन्य मामले में कहा गया :

"जंगल के बीच स्थित किसी खान के खनन कार्रवाई को रोकना संविधान के अनुच्छेद 51क (छ) के अनुपालन में है [3]।"

पुनः एक दूसरे मामले मे कहा गया :

"जहाँ खानों में अंधाधुंध कारवाई प्राकृतिक सम्पदा और पर्यावरण को खतरनाक साबित होती है वहाँ अनुच्छेद 51क (छ) में अन्तर्विष्ट सांविधानिक लक्ष्य की पूर्ति हेतु न्यायालय के पास समुचित रिट, आदेश जिसमें खान को बंद करने के लिए निदेश सम्मिलित है, के द्वारा हस्तक्षेप करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।" [4]

एक अन्य मामले में कहा गया :

"फैक्टरी से आम सड़क पर मल निःस्राव और या किसी निकास प्रणाली में उसे फेंकना अनुच्छेद 51क (छ) के प्रावधानों के विरुद्ध है और आम जनता के हित पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है।" [5]

एक मामले में जहाँ नागरिकों को पानी की उचित आपूर्ति न मिलने के विरुद्ध रिट पिटीशन फाइल किया गया था, न्यायालय ने कहाः

"जहाँ एक राज्य के नागरिकों को पानी की कमी का सामना करना पड़ा और परिणामस्वरूप उन्होंने सम्बन्धित कानूनी निकायों के विरुद्ध एक रिट पिटीशन फाइल किया तो पक्षकारों द्वारा जल के संरक्षण के बारे में किसी सुझाव के अभाव में न्यायालय ने आम जनता के हित में प्राधिकारियों द्वारा कार्रवाई का अपना

सुझाव रखा जिससे यथासंभव पीने के लिए पानी उपलब्ध हो और उसे नगर की जनसंख्या के बीच समान रूप से वितरित किया जाए[1]।"

जहाँ वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम में एक संशोधन को शक्ति वाह्य कह कर उसे चुनौती दी गई थी उच्चतम न्यायालय ने यह अधिनिर्धारित कियाः कि वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 (यथासंशोधन अधिनियम, 1991 द्वारा संशोधित) की धारा 49 (ग) में आयातित हाथी दांत के संव्यवहार का प्रतिषेध संविधान के शक्ति वाह्य नहीं है। यह व्यापार परिस्थितिकी के लिए खतरनाक है। यह प्रतिषेध अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय हाथी की संरक्षा के लिए है और उनकी गिरती हुई संख्या को रोकने के लिए संशोधनों को संविधान के अनुच्छेद 48 (क) और 51क (छ) को दृष्टि में रखकर लागू किया जाना है [2]।

यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण के संरक्षण एवं जल तथा वायु प्रदूषण को रोकने एवं वन्य जीवन के संरक्षण हेतु अधिनियमों के होने के बावजूद भी वे पर्याप्त रूप से प्रभावी नहीं हो रहे हैं। वस्तुतः इस संबंध में देश के प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों के प्रचार एवं उनके प्रति नागरिकों में आस्था उत्पन्न करके इसका पालन सुगम बनाया जा सकता है।

---

1. एआईआर 1987 एस0सी0 1109
2. (1988) 2 सिम.एल.सी. 211 (ए.आई.आर. मैन्युअल पंचम संस्करण, जिल्द 10, पृ0 335 पर उद्धृत)
3. (1988) 2 जैटी, 818,
4. एआईआर 1988 हि0प्र0 4

---

5. एआईआर 1988 गुज0 571. 1988 इलाहाबाद लॉ जर्नल 1271
2. इंडियन हैन्डीक्रॉफ्ट्स एम्पोरियम ब. यूनियन ऑफ इंडिया एआईआर 2003 एससी 3240

अध्याय – 13

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (ज) में निम्नलिखित रूप में कथित है:

"वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे"

यह उल्लेखनीय है कि मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन विधेयक पर संसद् में बहस के दौरान इस कर्तव्य के बारे में कुछ संशोधन प्रस्तुत किए गए थे। एक महत्त्वपूर्ण संशोधन निम्नलिखित था जो लोक सभा के माननीय सदस्य श्री शंकर दयाल सिंह ने पेश किया था :

"(खंड) (ज) के अन्दर मैंने यह कहा है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन के साथ–साथ सांस्कृतिक मर्यादा की बात भी हम उसमें करें। वह इसलिए मैंने कहा है कि जब तक हम अपनी संस्कृति के प्रति, अपने इतिहास के प्रति आदर का भाव नहीं रखते हैं तब तक हम अपने मुल्क के प्रति भी सच्चा प्यार नहीं रख सकते हैं[1]।"

यह कथनीय है कि व्यक्ति और देश की बौद्धिक एवं नैतिक उन्नति के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद तथा ज्ञानार्जन और सुधार की प्रवृत्ति विकसित करना आवश्यक है।

देश के सांस्कृतिक तत्त्वों को समझने के पश्चात् ही, दूसरे शब्दों में, देश की आत्मा को समझ कर ही इसके विकास का जो मॉडल निर्मित होगा वह सफल और सार्थक होगा। इसलिए सम्प्रति हमें ऐसी राष्ट्रीय चेतना की ऐसी भाव भूमि निर्मित करने की आवश्यकता है, जिसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, परम्परा और आधुनिकता तथा अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय हो। आज हम विज्ञान की उपलब्धियों को नकार नहीं सकते हैं और न अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा से बच सकते हैं। इस लिए राष्ट्र को ढालने की आवश्यकता है और यह भारतीय चिन्तन एवं परम्परा के अनुरूप है। प्रस्तुत उपबंध देश के नागरिकों का यह मूल कर्तव्य बनाता है कि वे अपने को नवयुग की अपेक्षाओं के अनुरूप बनाएं। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं बौद्धिकता के आधार पर नए मानवीय मूल्यों का अन्वेषण करना है और उन्हें स्थापित करना है तथा अपने भूले हुए अस्तित्व की पहचान को प्रतिष्ठित करना है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है इसके बारे में तत्कालीन विधि मंत्री श्री एच0आर0 गोखले ने मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन पर बहस के दौरान लोकसभा में अपने समापन भाषण में कहा था :

''वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है? यदि कोई व्यक्ति इस पर अपना मस्तिष्क लगाए तो इसे समझना सरल है। यह एक तर्कपूर्ण दृष्टिकोण रखना है, रूढिबद्ध नहीं होना है, विरासत से बंधे नहीं रहना है जो किसी प्रश्न का, जो विचार के लिए आता है, के अवैज्ञानिक अवधारण पर ले जाती है। वस्तुतः यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। मानववाद को भलीभाँति समझा जाता है। "जिज्ञासा और सुधार की भावना का अर्थ यह है कि हम अपने मस्तिष्क को बंद न करें। जिज्ञासा की भावना रहनी चाहिए और इसे हमें सुधार के विचार पर जिसकी समाज में हमें आवश्यकता है ले जाना चाहिए। क्या कोई कह सकता है कि क्या यह एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य नहीं है जो नागरिकों के लिए विहित किए जा रहे हैं [1]।''

भारतीय परम्परा वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की पक्षधर है। भारत में संभवतः ब्रह्माण्डीय नियम को समझने का प्रयास किया गया जिसे वेदों में 'ऋत' कहा गया है। 'ऋत' ब्रह्माण्डीय या शाश्वत विधि है जो सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् और अपरिवर्तनीय है, जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई और जिसके द्वारा इस पर जीवन विनियमित और धारित होता है। यह विश्व का एक सुव्यवस्थित सिद्धांत है। साथ ही पृथ्वी पर जीवन की दैवी व्यवस्था है। यह कहा गया कि धर्म को 'ऋत' की अनुरूपता में होना है। धर्म का अर्थ होता है "वह जो धारण करता है (धारयते इति धर्मः)।" इस प्रकार इस शब्द का अर्थ व्यापक है। **वस्तुतः धर्म भारतीय दर्शन की सर्वाधिक श्रेष्ठ कल्पना है जिसकी व्यापकता और गहराई के बारे में बहुत कुछ खोज की आवश्यकता है।** इसके विस्तृत अर्थ में इसके अन्तर्गत विधि अथवा कानून ही आता है और इसमें विधिक तंत्र के कृत्य भी सम्मिलित हैं। सामाजिक संदर्भ में इसका

अर्थ कर्तव्य या आचरण का उचित नियम आता है। इस प्रकार धर्म को सामाजिक व्यवस्था को विनियमित करने का एक उपकरण माना गया है। किन्तु इस विनियमन से अभिप्राय सामाजिक व्यवस्था को विनियमित करने वाले नियमों को समग्रता से लिया गया था। मनुष्य के समाज का अंग होने के साथ ही वह ब्रह्मांड से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार धर्म का अर्थ अपने प्रति समाज के अन्य व्यक्तियों, जीवित, मृत और जिन्हें अभी जन्म लेना है के प्रति और सारे प्राणियों के प्रति कर्तव्य है। यह सर्वाधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण दीर्घकाल तक चिन्तन करके विरचित किया गया है।

इस प्रकार भारतीय चिन्तन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण सदैव ही अपनाया जाता रहा है। भारतीय दार्शनिक विचार धाराएं भी इस पर आधारित हैं। समस्त दार्शनिक चिन्तन मनुष्य के अस्तित्व की व्याख्या और उसके चरम लक्ष्य को निर्धारित करने के बारे में ही है। इसमें दृश्यमान् जगत् तथा अनुभूत पराभौतिक शक्ति या सत्ता के बीच समन्वय और सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। वेदान्त दर्शन का ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता अध्यात्म को जीवन में उतारने का और जीवन को अध्यात्मपूर्ण बनाने का उपक्रम करती है। वह सारे प्राणियों को एक सत्ता से जोड़ती है जिसमें उनका आपस में सम्बन्ध होने के साथ ही लक्ष्य की एकता भी स्थापित होती है जो आध्यात्मिक के साथ ही लौकिक और राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से भी हितकर है। द्वन्द्वात्मक विकास का सिद्धांत सर्वप्रथम जगद्गुरु शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया था, जिसे हीगल के माध्यम से मार्क्स ने प्राप्त कर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में परिणत कर दिया।

देश की दीर्घकालिक पराधीनता में भारतीय ज्ञान–विज्ञानों का विकास रुक गया। जनता में निराशावाद की वृद्धि हुई और उसमें अंध विश्वास बढा। इसलिए समाज की वस्तुस्थितियों और सामाजिक दशाओं के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कुछ कम हो गया जिसकी समाज के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण न अपनाने और अंधविश्वास होने के कुछ अन्य कारण भी हैं।

अंधविश्वास का एक प्रमुख कारण लोगों में व्याप्त असुरक्षा की भावना भी है। असुरक्षा की इस भावना से अलग–अलग रूपों में समाज का प्रत्येक वर्ग आक्रांत है। चारित्रिक गिरावट ने विद्यमान सामाजिक/ राजनीतिक व्यवस्था से लोगों का विश्वास उठा दिया है।

समाज में व्याप्त पूर्ण व्यावसायिकता और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति लोगों पर इस प्रकार भारी प्रभाव डाल रही है कि लोगों ने सत्य–असत्य में अन्तर करना ही छोड़ दिया है। विज्ञापनों का हर तरफ बोलबाला है, उसकी चकाचौंध में जनता आँख मूँदकर फँस रही है।

यह आश्चर्यजनक है कि विज्ञान को एक विषय के रूप में पढ़कर भी लोग इसके आधारभूत सिद्धांतों को भूल जाते है। जबकि आवश्यकता अपनी सोच को विज्ञान सम्मत बनाने की है। विज्ञान को जीवन शैली से जोड़ने की आवश्यकता है जिससे वैज्ञानिक और सामाजिक सोच का प्रभाव एक दूसरे पर हो। इसके साथ ही इसमें कल्याण की भावना की अपार क्षमता भी निहित है। गहराई से देखें तो विज्ञान एक परम अध्यात्म है जो प्रत्येक रहस्य की तर्कपूर्ण एवं विशद व्याख्या करता है। इसे समझने के बाद भी मनुष्य उसी आनन्द की अनुभूति करता है, जैसा कि न आर्कमिडीज़ ने वस्तुओं के जल के ऊपर तैरने के सिद्धांत को जानकर किया था, जिसकी अनुभूति हमारे ऋषि–मुनि आध्यात्मिक अनुभवों में करते हैं। इसके लिए हमारी दृष्टि गहरी और दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण न अपनाने का एक अन्य मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। इसके लिए शिक्षा के स्वरूप में भी आमूल परिवर्तन अपेक्षित है जिससे विज्ञान को अनुभव और व्यवहार से जोड़ा जाए और वह हमारे चिन्तन का अभिन्न अंग हो।

वास्तविक शिक्षा से ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्वभावगत रूप से आचरण में आएगा और समाज विकास की ओर अग्रसर होगा। **वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से ही मनुष्य का बौद्धिक विकास सम्भव है।**

मानववाद या मानवता की भावना को सहृदयता भी कहा जा सकता है। प्राणिजगत् में मनुष्य सर्वोपरि है। यह एक परम सत्य है। उसे उस सर्वोपरिता के अनुरूप गुणों को ग्रहण करना है और उसके प्रतिकूल आचरण का त्याग करना चाहिए। वे गुण हैं दया, सहानुभूति, क्षमा, करुणा आदि। ये गुण मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं। ये वे आदर्श हैं जिन्हें पाने का प्रयत्न प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। यह मनुष्य को सच्चरित्र बनाता है। इस आदर्श को अपनाने वाले के लिए परहित प्रधान होता है और अपना अहं अस्तित्वहीन हो जाता है। यह भावना भारतीय संस्कृति की मूलाधार है। अध्याय 12 में इसके बारे में थोड़े

विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। "वसुधैवकुटुम्बकम्" और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना के आदर्श इस देश के मनीषियों के चिन्तन से उद्‌भूत हैं। पुराणों के विशाल वाङ्‌मय के सार को निम्नलिखित रूप में कहा गया है :

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

(अठारह पुराणों में महर्षि वेद व्यास ने दो बातें कही हैं परोपकार (दूसरे के हित का कार्य) पुण्य है–और दूसरे को दुख देना पाप है।)

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है :

परहित सरिस धरम नहीं भाई

परपीडा सम नहीं अधमाई।

(दूसरे का हित करने के समान कोई अन्य धर्म नहीं है और दूसरे को पीड़ा देने से बढकर दूसरा अधम काम नहीं है।)

वस्तुतः इस गुण (परोपकार) पर प्रचीन भारतीय साहित्य में इतना लिखा गया है कि सबके निर्देश मात्र से ही एक पुस्तक बन जाएगी।

क्षमा, दया, सहानुभूति, करुणा आदि को भगवान् की विशेषता बताई गई है। जिन मनुष्यों ने इन गुणों को आचरित किया है उन्हें देवत्व प्राप्त माना गया है। महर्षि वाल्मीकि क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को बहेलिए द्वारा मारे जाते देखकर करुणा द्रवित हो गए और उस बहेलिए को शाप दे डाला। अपने इस कार्य के कारण वे न केवल विश्व के प्रथम कवि हुए अपितु उन्हें राम कथा लिखने की प्रेरणा मिली। व्यास का कथन उपरिलिखित है। व्यास न केवल वेदों के संग्रहकर्त्ता हुए अपितु भगवान् के अवतार माने गए। अगस्त्य मुनि ने प्रथम बार उत्तर दक्षिण भारत का संम्पर्क स्थापित किया और भारतीय संस्कृति का विश्व बंधुत्व का सन्देश लेकर समुद्र पार गए जिसे (आलंकारिक भाषा में) समुद्र पी जाना कहा गया है। वे ऋषियों में श्रेष्ठ माने गए और एक तारे का नाम उनके नाम पर है। गौतम मनुष्यों के कष्टों पर करुणा से द्रवित होकर उनके उद्धार के लिए राजमहल छोड़ कर संन्यासी बन गए। वे भगवान् के अवतार माने गए। भारतीय वाङ्‌मय इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। जिनमें परहित में लगे मनुष्यों को देव स्वरूप माना गया है। आज भी परोपकार के काम को धार्मिक और आध्यात्मिक माना जाता है। धार्मिक विचारों वाले सम्पन्न लोग अस्पताल, धर्मशालाएं, विद्यालय, अनाथालय इत्यादि स्थापित करने को बड़ा पुण्य कार्य मानते हैं।

तथापि आज के युग में बढ़ती हुई व्यावसायिकता और स्वार्थपरता तथा समृद्धि प्राप्त करने की इच्छा में रत होने से मानवता के कार्य को करने में गिरावट आ रही है।

समाज के सुव्यवस्थित रूप से चलने के लिए और मनुष्य में भ्रातृत्व भावना बढ़ाने के लिए, जो राष्ट्र के हित में भी है इस भावना को दृढ़ बनाना आवश्यक है। यह मूल कर्तव्य इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। वस्तुतः यदि प्राचीन भारतीय आदर्शों को शिक्षा के माध्यम से लोगों को हृदयंगम कराया जाए तो इस उद्देश्य की पूर्ति अधिक सरलता से हो सकती है।

ज्ञानार्जन मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है। मनुष्य की ज्ञानार्जन की इसी प्रवृत्ति ने हमें आज विकास के इस बिन्दु तक पहुँचाया है और आगे इससे अनन्त संभावनाएं हैं।

ज्ञानार्जन की भावना इस देश भारत की परम्परा और जीवन तथा शिक्षा प्रणाली में आदिकाल से विद्यमान रही है बल्कि वह ज्ञान प्राप्त करने की आधारभूत रीति रही है।

इसे आध्यात्मिक रूप का माना गया है।

ब्रह्म सूत्र में कहा गया है

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"

(जिज्ञासा ही ब्रह्म का प्रारम्भ और अन्त है)

संभवतः ज्ञानार्जन की भावना ही भारत में विद्यमान इतने विशाल ज्ञान भंडार की मूल हेतु हैं। आश्रमों की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में गुरु–शिष्य परम्परा में शिष्य प्रश्न करते थे और गुरु उनका उत्तर देते थे और इस प्रकार शिक्षा आगे बढ़ती थी और ज्ञान की प्राप्ति होती थी। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय वाङ्मय अधिकांश रूप से प्रश्न उत्तर के रूप में है। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, रामचरित मानस आदि इसी रूप में हैं। उपनिषदों का सारा वाङ्मय भी इसी रीति में है। वस्तुतः उपनिषद का शाब्दिक अर्थ ही होता है "पास बैठो" अनेक धर्मशास्त्र भी इसी विधा में हैं। वस्तुतः ज्ञानार्जन की भावना मनुष्य को बौद्धिक रूप से उन्नत बनाने के साथ ही कला और विज्ञानों के विकास की आधारशिला है।

भारतीय परम्परा और व्यवहार में सुधार की भावना सदा से ही रही है। समाज को परिवर्तनशील माना गया। इसलिए सामाजिक व्यवस्था और मनुष्य के आचरण को विनियमित करने वाले नियमों, साथ ही मनुष्यों के आचरण में उत्तरोत्तर सुधार की अपेक्षा परिकल्पित की गई। इसलिए समाज को विनियमित करने वाले नियमों को भी परिवर्तनशीला माना गया। इन नियमों का ध्येय केवल सामाजिक संबंधों का विनियमन ही नहीं माना गया अपितु मानव को और अधिक विकास की ओर ले जाना और जीवन का ध्येय उसके लिए संरचित असीम उपलब्धियों को प्राप्त करना माना गया। अतएव परिवर्तन और तदनुरूप सुधार को अपनाते जाना जीवन का मर्म माना गया। इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं, मनुष्यों के आचरण तथा उनके जीवन की प्रणाली में सुधार होता रहा है। गुरुनानक, कबीरदास, दादू, रैदास (रविदास) आदि सतों ने अनेक धार्मिक तथा सामाजिक सुधार किए, किन्तु देश की पराधीनता के काल में सुधारों की गति अवरुद्ध हो गई। यह उल्लेखनीय है कि अनेक कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण हुआ जिसके फलस्वरूप अनेक धार्मिक तथा सामाजिक सुधार हुए। स्वामी विवेकानन्द ने नवजागरण का बिगुल बजाया। इन सबका उल्लेख पुस्तक के प्रथम अध्याय में किया गया है। इस पुनर्जागरण ने ही राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा दी। वस्तुतः सुधार की आवश्यकता सदैव बनी रहेगी। श्री कृष्ण ने भगवद् गीता में कहा है जिसे इस पुस्तक में अन्यत्र उद्धृत किया गया है **''योगः कर्मसु कौशलम्''** (कर्म में कुशलता ही योग है) वस्तुतः किसी कार्य में पूर्ण कुशलता उपलब्ध करना एक आदर्श है। इसका तात्पर्य अपने कार्य की रीति में आवश्यकतानुसार उत्तरोत्तर सुधार करना है। दूसरे शब्दों में, यह एक आध्यात्मिक उपलब्धि है। इस प्रकार सुधार की भावना का बहुत महत्त्व है।

वस्तुतः इन कर्तव्यों में उल्लिखित कर्तव्य परस्पर सम्बद्ध हैं अथवा अन्योन्याश्रित हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करता है। ज्ञानार्जन मनुष्य को अपने अस्तित्व का और अन्य मनुष्यों से अपने सम्बंधों का बोध कराता है। इसका बोध होने पर मनुष्य के अपने हित का दूसरे के हित में विलय हो जाता है। यही मानववाद है। समाज के विकास की गत्यात्मकता से सामाजिक संस्थाओं और मनुष्यों के आचरण के नियमों में सुधार होता रहेगा। कालक्रम से सुधारों के द्वारा ही मनुष्य विकास की विद्यमान मंजिल पर पहुँचा है। इसलिए सुधार की भावना रखना अपेक्षित है। इस प्रकार यह कर्तव्य मनुष्य की बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही समाज की उन्नति के लिए अभिप्रेत है।

अध्याय – 14

सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा और हिंसा से विरत रहना

उक्त कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क (झ) में निम्नलिखित रूप में कथित हैः

"सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे। "

यह ज्ञातव्य है कि लोकतांत्रिक प्रणाली में, जैसा कि हमारे देश में है, सारी सरकारी/ सार्वजनिक सम्पत्ति लोक सम्पत्ति होती है और यह नागरिकों के लाभ तथा सुविधा के लिए होती है। यह देश को समृद्ध करती है और औद्योगिक संस्थान देश के उत्पादन में वृद्धि करते हैं। इसे क्षति पहुँचाना अथवा 'नष्ट करना लोक हित के विरुद्ध कार्य होने के साथ ही लोकतांत्रिक प्रणाली पर कुठाराघात होता है तथा अव्यवस्था फैलाने की कोटि में आता है।

यह देखा जा रहा है कि आए दिन कोई न कोई हड़ताल होती रहती है या रैली निकलती रहती है। जब कभी हड़ताल, बंद, जुलूस अथवा रैली, विशेषतः राजनीतिक रूप की निकलती है, तो प्रायः भीड का रवैया हिंसात्मक हो जाता है और लोक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाई जाती है, विशेषतः भवनों एवं यातायात के साधनों को। जो लोग इसमें नहीं भी भाग लेते है वे मूक दर्शक बने रहते है और अपने को असहाय महसूस करते हैं।

सम्पत्ति को नष्ट करना या क्षति पहुँचाना एक हिंसात्मक कार्य है। हिंसा के दायरे मे न केवल व्यक्तियों को क्षतिकारित करना ही आता है अपितु लोक सम्पत्ति या व्यक्तिगत सम्पत्ति को नष्ट करना और लोक अधिकारियों एवं प्राइवेट नागरिकों को असुविधाकारित करना या उनके स्वतंत्र संचलन में बाधा उत्पन्न करना आदि भी आता है। निम्नलिखित कारणों से ऐसे कार्य अवांछनीय हैं।

(1) इस देश की परम्परा और संस्कृति अहिंसा की रही है। वेदों के काल से ही अहिंसा की विचारधारा इस देश में रही है। वेद द्रष्टा ऋषि ऋषभचरण ने इस पर जोर दिया जो आगे चलकर जैन धर्म के प्रवर्तक माने गए। भारतीय संस्कृति में यह मान्यता रही है, जैसा गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा हैः **परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।**

(2) भारत में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रवर्तन अहिंसा को मुख्य आधार मानकर हुआ।

(3) लोकतांत्रिक प्रणाली में हिंसा द्वारा किसी लक्ष्य या मांग की पूर्ति का प्रयत्न अवांछित है। यह अव्यवस्था फैलाने की कोटि में आता है।

(4) देश की विधि में हिंसात्मक कार्यों से सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करने या नुकसान पहुँचाने या लोक अधिकारियों, नागरिकों को असुविधाकारित करना अपराध है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि जो देश आदि काल से सहिष्णुता और अहिंसा का पालक रहा है और इसके लिए ख्यात रहा है वहाँ ऐसी घटनाएं हों जिनमें इस तरह की हिंसा हो और सोच समझ विहीन तरीके से लोक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाई जाए या उसे नष्ट किया जाए। इसीलिए यह आवश्यक हुआ कि लोक सम्पत्ति को सुरक्षित रखने और हिंसा से दूर रहने को नागरिकों का मूल कर्तव्य बनाया जाए।

वस्तुतः किसी नागरिक को राज्य या शासन से कोई भी शिकायत हो तो उससे उसे लोक सम्पत्ति को नष्ट करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता है। अपनी शिकायतों को दूर कराने या उनके समाधान या उपचार पाने के लिए विधिक और सांविधानिक रीतियां हैं जिनका सहारा लिया जा सकता है।

यह ज्ञातव्य है कि देश के संविधान द्वारा नागरिकों को कतिपय स्वतंत्रताएं दी गई हैं जिनके द्वारा प्रदर्शन, रैली या संघ बनाना अनुमत्य है किन्तु इसके साथ ही राज्य द्वारा बनाई गई ऐसी विधियों को संरक्षण प्राप्त है जो ऐसे हड़ताल या प्रदर्शनों को रोकने के लिए उद्दिष्ट हैं जिनसे राज्य की सुरक्षा अथवा लोक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस संबंध में संविधान द्वारा नागरिकों को प्राप्त स्वतंत्रताएं और उन पर प्रतिषेध लगाने के प्रावधानों का संक्षिप्त विवरण सुसंगत होगा। संविधान के अनुच्छेद 19 में नागरिकों को अन्य के साथ निम्नलिखित स्वतंत्रताएं दी गई हैं।

19 (1) (क) वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता;

(ख) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन की स्वतंत्रता;

(ग) संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता

अब इन स्वतंत्रताओं के विस्तार और सीमाओं पर एक–एक करके संक्षेप में प्रकाश डाला जाएगा।

वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

यह ज्ञातव्य है कि प्रदर्शन या धरने का अधिकार इस अभिव्यक्ति के अधिकार के अन्तर्गत आता है, तथापि इसमें हडताल करने का अधिकार नहीं आता है। हड़ताल करने का अधिकार कोई मूल अधिकार नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त अभिव्यक्ति में अन्तर्विष्ट स्वतंत्रता के भीतर प्रेस की स्वतंत्रता भी आती है, किन्तु यह स्वतंत्रता औद्योगिक सम्बन्धों को विनियमित करने वाले कानूनों के अधीन है। इसके साथ ही उक्त स्वतंत्रता पर अनुच्छेद 19 (2) के अधीन निम्नलिखित आधारों पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं।

(1) राज्य की सुरक्षा

(2) लोक व्यवस्था

(3) विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों के हित में

(4) शिष्टाचार या सदाचार के हित में

(5) न्यायालय अवमान

(6) मानहानि

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि राज्य की सुरक्षा सर्वोपरि है। उसे सुनिश्चित करना प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली का सर्वोपरि दायित्व होता है। यह कथनीय है कि लोक अव्यवस्था फैलाने की दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य राज्य की सुरक्षा को खतरा पहुँचाने वाला हो सकता है और इसलिए उस पर विधि अथवा कानून द्वारा युक्तियुक्त र्निबंधन लगाया जा सकता है। "राज्य की सुरक्षा" पद के साथ "के हित में" पदावली से यह अर्थ निकलता है कि यदि किसी कार्य से राज्य को खतरे की आशंका भी हो तो उसे करने पर रोक लगाई जा सकती है।

"लोक व्यवस्था से तात्पर्य है–राज्य की बाह्य तथा आन्तरिक खतरों से सुरक्षा करना। इस प्रकार आन्तरिक विक्षोभ या विद्रोह उत्पन्न करना लोक व्यवस्था के विरुद्ध होगा। इस प्रकार इस उद्देश्य से हडताल करवाना कि श्रमिकों में विक्षोभ उत्पन्न हो, ऐसा अपराध है जो लोक व्यवस्था के प्रतिकूल है। ऐसी हडताल पर रोक लगाई जा सकती है।"

लोक व्यवस्था को कायम रखने के लिए सरकार अग्रिम कार्रवाई भी कर सकती है। इस दृष्टि से उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 जो मजिस्ट्रेट को सभाओं और जुलूसों पर निर्बन्धन लगाने की शक्ति प्रदान करती है, अनुच्छेद 19 (क) का अतिक्रमण नहीं करती है। अपराध का उद्दीपन भी लोक अव्यवस्था फैलाने का काम कर सकता है। वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी व्यक्ति को इसके लिए समर्थ नही बनाती कि वह लोगों को अपराध करने के लिए भड़काए या उकसाए।

भारत की प्रभुता एवं अखंडता के हित में भी वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाया जा सकता है। इस प्रकार ऐसी बातों के कथन या प्रकाशन पर निर्बन्धन लगाया जा सकता है जिससे भारत की प्रभुता और अखंडता पर किसी प्रकार की आँच आती हो।

सभा एवं सम्मेलन की स्वतंत्रता

जैसा पहले लिखा गया है, संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (ख) भारत के सभी नागरिकों को शान्तिपूर्वक और निरायुध (बिना कोई हथियार लिए) सम्मेलन का अधिकार देता है। यह द्रष्टव्य है कि इस अधिकार के प्रयोग में निम्नलिखित दो शर्तों का पालन होना चाहिएः–

(1) सभा शान्ति पूर्वक होनी चाहिए

(2) सभा बिना हथियार के होनी चाहिए

इस अधिकार के भीतर सार्वजनिक सम्मेलनों, सभाओं और जुलूस आदि का अधिकार भी सम्मिलित है।

इस अधिकार पर अनुच्छेद 19 (3) के अधीन निम्नलिखित निर्बंधन लगाया जा सकता हैः–

(1) भारत की प्रभुता और अखण्डता के हित में

(2) लोक व्यवस्था के हित में

उक्त उपबन्ध इस विषय से सम्बन्धित वर्तमान विधियों की रक्षा करता है, इस शर्त के साथ कि इसके अन्तर्गत लगाए गए निर्बन्धन युक्तियुक्त हों। यह उपबन्ध राज्य को भविष्य में भी ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करता है।

इस प्रकार यदि कोई सभा हिंसात्मक और लोक शान्ति तथा लोक व्यवस्था को भंग अथवा बाधित करने वाली है तो उसे इस अधिकार की सुरक्षा नहीं प्राप्त हो सकती है। इस रूप के सम्मेलनों, सभाओं, जुलूसों या रैलियों को अविधिपूर्ण घोषित किया जा सकता है और उसे भंग करने का आदेश दिया जा सकता है। भारतीय दंड संहिता के अध्याय 8 में इन दशाओं को कहा गया है जिनके होने से कोई सभा अविधिपूर्ण हो सकती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 141 के अनुसार 5 या 5 से अधिक व्यक्तियों की सभा उस दशा में अविधिपूर्ण हो सकती है जब ऊपर कथित अपेक्षाएं पूरी होती हों।

(ग) संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता

जैसा ऊपर लिखा गया है अनुच्छेद 19 (1) (ग) भारत के प्रत्येक नागरिक को संगम या संघ बनाने का अधिकार देता है, तथापि उक्त अनुच्छेद का खण्ड (4) राज्य को इस बात लिए सशक्त बनाता है कि वह इस अधिकार के प्रयोग पर

(1) भारत की प्रभुता और अखंडता

(2) लोक व्यवस्था, या

(3) सदाचार के हितों में

युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सके।

यह उपबन्ध इस विषय पर वर्तमान विधियों की रक्षा करता है और भविष्य में भी इस पर विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करता है। यह उपबंध अन्य प्रकार के संगम या संघ बनाने के अतिरिक्त श्रमिक संघ और राजनीतिक दल बनाने की अनुमति करता है। किसी संगम या संघ बनाने के अधिकार में उसे चालू रखने का अधिकार भी सम्मिलित है।

यह उल्लेखनीय है कि यदि श्रमिक संघ या कोई राजनीतिक दल हडताल या बंद या इस प्रकार के कोई अन्य कार्य करता है तो वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य या सभा करने के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में जो निर्बन्धन उल्लिखित हैं वे लागू रहेंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जिन मूल अधिकारों के अधीन प्रदर्शन करना, जुलूस, रैली निकालना इत्यादि आते हैं उन सभी पर मुख्य रूप से देश की प्रभुता और अखंडता तथा लोक व्यवस्था के हित में युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं। सार्वजनिक संपत्ति को क्षति या नुकसान पहुँचाना या हिंसा के कार्य लोक व्यवस्था को भंग कर सकते हैं और देश की सुरक्षा के लिए खतरा भी उत्पन्न कर सकते हैं। अतएव ऐसे कार्यों पर विधि के द्वारा निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं और वस्तुतः लगाए गए हैं। उनमें से कुछ मुख्य का विवेचन संक्षेप में किया जाएगा।

भारतीय दंड संहिता के अध्याय 8 में समूह बनाकर आपराधिक कार्यों को करना दंडनीय बनाया गया है। उसी प्रकार जो किसी लोक सम्पत्ति को या किसी व्यक्ति की सम्पत्ति को हानि या नुकसान पहुँचाता है वह "रिष्टि" का अपराध करता है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 425 में "रिष्टि" की निम्नलिखित परिभाषा दी गई हैः

"जो कोई इस आशय से या यह सम्भाव्य जानते हुए कि वह लोक की या किसी व्यक्ति की सदोष हानि या नुकसान कारित करे, किसी सम्पत्ति का नाश या किसी सम्पति में या उसकी स्थिति में ऐसी

तब्दीली कारित करता है, जिससे उसका मूल्य या उपयोगिता नष्ट या कम हो जाती है उस पर क्षतिकारक प्रभाव पड़ता है, वह "रिष्टि" करता है।"

इस परिभाषा को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उक्त धारा में स्पष्टीकरण दिए गए हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. **रिष्टि के अपराध के लिए यह आवश्यक** नहीं है कि अपराधी क्षतिग्रस्त या नष्ट सम्पत्ति के स्वामी की हानि या नुकसान कारित करने का आशय रखता हो। यह पर्याप्त है कि उसका यह आशय है या वह यह सम्भाव्य जानता है कि वह किसी सम्पत्ति को क्षति करके किसी व्यक्ति को चाहे वह सम्पत्ति उस व्यक्ति की हो या नहीं सदोष हानि या नुकसान कारित करे।

2. ऐसी सम्पत्ति पर प्रभाव डालने वाले कार्य द्वारा जो उस कार्य को करने वाले व्यक्ति की हो, या संयुक्त रूप से उस व्यक्ति की और अन्य व्यक्तियों की हो, रिष्टि की जा सकेगी।"

रिष्टि कारित करने के लिए दंड संहिता में दंड का प्रावधान किया गया है। यह कहा गया है:

"जो कोई रिष्टि करेगा वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से जिसकी अवधि तीन मास तक हो सकेगी, या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

उसी प्रकार दूसरे के कब्जे में होने वाली सम्पत्ति पर बिना उस व्यक्ति की सहमति के जाना अपराध है जिसे 'आपराधिक अतिचार' कहा जाता है। इसे दंड संहिता की धारा 441 में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है:

"आपराधिक अतिचार–जो कोई ऐसी सम्पत्ति में या ऐसी सम्पत्ति पर जो किसी दूसरे के कब्जे में है इस आशय से प्रवेश करता है कि वह कोई अपराध करे या किसी व्यक्ति को जिसके कब्जे में ऐसी सम्पत्ति है अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्ध करे।"

अथवा ऐसी सम्पत्ति में या ऐसी सम्पत्ति पर विधि–पूर्वक प्रवेश करके वहाँ विधि विरुद्ध रूप में इस आशय से बना रहता है कि तद्द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्ध करे या इस आशय से बना रहता है कि वह कोई अपराध करे,

वह आपराधिक अतिचार करता है, यह कहा जाता है।"

आपराधिक अतिचार कई प्रकार का होता है और उनके लिए भिन्न भिन्न परिमाण के दंड विहित किए गए हैं।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति का, जिसमें सरकारी अधिकारी भी आते हैं, घेराव करना अर्थात् उसके गमनागमन में बाधा डालना भी "सदोष अवरोध " या "सदोष परिरोध" के नाम से भारतीय दंड संहिता में अपराध है। "सदोष अवरोध" और "सदोष परिरोध" को भारतीय दंड सहिता की क्रमशः धारा 339 और 340 में परिभाषित किया गया है और इसके लिए धारा 341 और 342 में दंड विहित किया गया है। उक्त धाराएं निम्नलिखित हैं:

"339 सदोष अवरोध – जो कोई किसी व्यक्ति को स्वेच्छया ऐसी बाधा डालता है कि उस व्यक्ति को उस दिशा में, जिसमें उस व्यक्ति को जाने का अधिकार है, जाने से निवारित कर दे, वह उस व्यक्ति का सदोष अवरोध करता है, यह कहा जाता है।"

"340 सदोष परिरोध – जो कोई किसी व्यक्ति का इस प्रकार सदोष अवरोध करता है कि उस व्यक्ति को निश्चित परिसीमा के परे जाने से निवारित कर दे, वह उस व्यक्ति का "सदोष परिरोध" करता है, यह कहा जाता है।"

"341 सदोष अवरोध के लिए दण्ड – जो कोई किसी व्यक्ति का सदोष अवरोध करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपये तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

"342 सदोष परिरोध के लिए दण्ड – जो कोई किसी व्यक्ति का सदोष परिरोध करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपये तक का हो सकेगा, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा"

इसके साथ ही किसी हड़ताल इत्यादि द्वारा यदि अवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो ऐसी हड़ताल को प्रतिषिद्ध किया जा सकता है और प्रतिषेध का उल्लंघन करने वाले को दंडित किया जा सकता है। यह उपबंध आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 द्वारा किया गया है।

उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है कि "कतिपय वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उनमें व्यापार और वाणिज्य के नियंत्रण के लिए जनसाधारण के हित में उपबंध करने के लिए अधिनियम।"

"आवश्यक वस्तु" को अधिनियम की धारा 2(क) में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :

(क) आवश्यक वस्तु से निम्नलिखित वस्तु–वर्गों में से कोई अभिप्रेत हैः–

(i) पशुओं का चारा, जिसके अन्तर्गत खली और अन्य सारकृत चारे भी हैं;

(ii) कोयला, जिसके अन्तर्गत कोक और अन्य व्युत्पत्तियां भी हैं;

(ii) मोटरगाड़ियों के संघटक भाग और उपसाधन;

(iv) सूती और ऊनी वस्त्र

(ivक) औषधि;

स्पष्टीकरण – इस उपखंड में, "औषधि" का वही अर्थ है जो औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम 1940 (1940 का 23) की धारा 3 के खंड (ख) में है।

(v) खाद्य पदार्थ, जिनके अन्तर्गत खाद्य, तिलहन और तेल भी हैं;

(vi) लोहा और इस्पात, जिनके अन्तर्गत लोहे और इस्पात के विनिर्मित उत्पाद भी हैं;

(vii) कागज, जिनके अन्तर्गत अखबारी कागज, पेपरबोर्ड और गत्ता भी हैं;

(viii) पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पाद;

(ix) कच्ची कपास, चाहे ओटी हुई हो या ओटी हुई न हो, और बिनौला

(x) कच्चा पटसन;

(xi) **कोई अन्य वस्तु वर्ग** – जिसे केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना में आदेश द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए आवश्यक वस्तु घोषित करे और जो ऐसी वस्तु हो जिसके बारे में संसद् को, संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 33 के आधार पर विधियां बनाने की शक्ति है।"

अधिनियम केन्द्र सरकार को आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय, वितरण आदि का नियंत्रण करने की शक्ति प्रदान करता है जैसा अधिनियम की धारा 3 में उपबंधित है जो निम्नलिखित प्रावधान करती है;

"3 आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, प्रदाय, वितरण, आदि का नियंत्रण करने की शक्तियां – (1) यदि केन्द्रीय सरकार की यह राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने या बढ़ाने के लिए या उसका साम्यिक वितरण और उचित कीमतों पर उसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए अथवा भारत की रक्षा के लिए या सैनिक संक्रियाओं के दक्ष संचालन के लिए किसी आवश्यक वस्तु की प्राप्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह आदेश द्वारा उसके उत्पादन, प्रदाय और वितरण तथा उसमें व्यापार के और वाणिज्यिक विनियमन या प्रतिषेध के लिए उपबंध कर सकेगी।"

उक्त धारा के अधीन दिए गए किसी आदेश का उल्लंघन करने पर शास्ति (दण्ड) का उपबंध किया गया है जो अधिनियम की धारा 7 में कथित है, जो अग्रलिखित हैः

7. **शास्तियां** – (1) यदि कोई व्यक्ति धारा 3 के अधीन किए गए किसी आदेश का उल्लंघन करेगा,–

(क) तो वह, –

(i) उस धारा की उपधारा (2) के खंड (ज) या खंड (झ) के प्रति निर्देश से किए गए आदेश की दशा में कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा, तथा

(ii) किसी अन्य आदेश की दशा में कारावास से जिसकी अवधि तीन मास से कम की नहीं होगी किन्तु सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगाः

परन्तु न्यायालय किन्हीं पर्याप्त और विशेष कारणों के आधार पर जिनका निर्णय में उल्लेख किया जाएगा, तीन मास से कम की अवधि के कारावास का दण्डादेश दे सकेगाः

(ख) तो ऐसी सम्पत्ति जिसकी बाबत आदेश का उल्लंघन किया गया है सरकार के पक्ष में समपहृत (confiscate) कर ली जाएगी।

(ग) तो कोई पैकेज, आवेष्टक या पात्र जिसमें सम्पत्ति पाई गई हो और कोई पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य प्रवहण जिसे सम्पत्ति को ले जाने में प्रयुक्त किया गया हो, न्यायालय द्वारा आदेश दिए जाने पर सरकार के पक्ष में समपहृत कर लिए जाएंगे।

(2) यदि कोई व्यक्ति जिसको धारा 3 की उपधारा (4) के खंड (ख) के अधीन निदेश दिया गया हो उस निदेश का अनुपालन करने में असफल रहेगा तो वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास से कम नहीं होगी किन्तु सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगाः

परन्तु न्यायालय किन्ही पर्याप्त और विशेष कारणों के आधार पर, जिनका निर्णय में उल्लेख किया जाएगा, तीन मास से कम की अवधि के कारावास का दण्डादेश दे सकेगा।

(2क) यदि उपधारा (1) के खंड (क) के उपखंड (ii) के अधीन या उपधारा (2) के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया कोई व्यक्ति उसी उपबंध के अधीन किसी अपराध के लिए पुनः सिद्धदोष ठहराया जाएगा तो, वह द्वितीय और प्रत्येक पश्चातवर्ती अपराध के लिए कारावास से जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माना का भी दायी होगाः

परन्तु न्यायालय किन्हीं पर्याप्त और विशेष कारणों के आधार पर, जिसका निर्णय में उल्लेख किया जाएगा, छह मास से कम की अवधि के कारावास का दंडादेश दे सकेगा।

(2ख) उपधारा (1), (2) और (2क) के प्रयोजनों के लिए यह बात कि उपधारा (1) के खंड (क) के उपखंड (ii) के अधीन या उपधारा (2) के अधीन किसी अपराध से जनसाधारण या किसी व्यक्ति को कोई खास हानि नहीं हुई है, यथास्थिति, तीन मास या छह मास से कम की अवधि के लिए कारावास का दण्डादेश देने का पर्याप्त और विशेष कारण होगा।

(3) जहाँ उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध से सिद्धदोष हुआ कोई व्यक्ति, किसी आवश्यक वस्तु की बाबत किसी आदेश के उल्लंघन के लिए उस उपधारा के अधीन किसी अपराध का पुनः सिद्धदोष होता है वहाँ वह न्यायालय जिसके द्वारा ऐसा व्यक्ति सिद्धदोष किया जाए उस किसी शास्ति के अतिरिक्त जो उस धारा के अधीन उस पर अधिरोपित की जाए, आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति उस आवश्यक वस्तु से छह मास से अन्यून ऐसी कालावधि तक, जैसी आदेश में न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए, कोई कारोबार नहीं करेगा।

हड़ताल इत्यादि से आवश्यक सेवाओं में बाधा पहुँचाने से रोकने के लिए आवश्यक सेवा अधिनियम, 1981 पारित किया गया है। अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है।

कुछ आवश्यक सेवाएं तथा प्रसामान्य सामुदायिक जीवन बनाए रखने का उपबन्ध करने के लिए अधिनियम

अधिनियम में आवश्यक सेवाओं को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है।

(क) आवश्यक सेवा से अभिप्रेत है –

(i) कोई डाक, टेलीग्राफ या टेलीफोन सेवा और इसके अंतर्गत इनसे संबंधित कोई सेवा भी है;

(ii) कोई रेल सेवा या वायु मार्ग द्वारा यात्रियों या माल के वहन के लिए कोई परिवहन सेवा अथवा ऐसे भू–मार्ग द्वारा यात्रियों या माल के वहन के लिए कोई अन्य परिवहन सेवा जिसकी बाबत संसद् को विधि बनाने की शक्ति है;

(iii) विमान–क्षेत्रों की क्रिया या उनके अनुरक्षण से अथवा वायुयान को चलाने, उसकी मरम्मत या उसके अनुरक्षण से संबंधित कोई सेवा अथवा अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1971 की धारा 3 के अधीन गठित भारत अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण में कोई सेवा भी है;

(iv) किसी महापत्तन में या उसके कार्यकरण के संबंध में कोई सेवा, जिसके अंतर्गत ऐसे किसी पत्तन में माल की लदाई, उतराई, संचालन या भंडारकरण से संबंधित कोई सेवा भी है;

(v) माल या यात्रियों की सीमा शुल्क से निकासी से या तस्करी के निवारण से संबंधित कोई सेवा;

(vi) संघ के सशस्त्र बलों के किसी स्थापन में या उससे संबद्ध कोई सेवा, अथवा रक्षा से संबद्ध किन्हीं अन्य स्थापनों या प्रतिष्ठानों में कोई सेवा;

(vii) रक्षा से संबद्ध किसी प्रयोजन के लिए अपेक्षित किसी माल के उत्पादन से संबंधित किसी स्थापन या उपक्रम में कोई सेवा;

(viii) किसी अनूसूचित उद्योग से संबंधित उपक्रम के किसी अनुभाग में कोई सेवा, जिसके कार्यकरण पर ऐसे उपक्रम या उसमें नियोजित कर्मचारियों की सुरक्षा निर्भर है;

स्पष्टीकरण – इस उपखंड के प्रयोजनों के लिए ''औद्योगिक उपक्रम'' और ''अनुसूचित उद्योग'' पदों के वही अर्थ होंगे जो उनके उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 3 के खंड (घ) और खंड (झ) में हैं।

(ix) केन्द्रीय सरकार, के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी ऐसे उपक्रम के, जो खाद्यान्न के क्रय, उपापन, भंडारण, प्रदाय या वितरण के कारोबार में लगा उपक्रम है, कार्यकरण में या उसके संबंध में कोई सेवा;

(x) किसी संघ राज्य क्षेत्र, छावनी क्षेत्र या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन उपक्रम में सार्वजनिक सफाई, स्वच्छता या जल प्रदाय की किसी प्रणाली, अस्पतालों या चिकित्सालयों में या उसके कार्यकरण के संबंध में कोई सेवा;

(xi) बैंककारी (Banking) के संबंध में या उसके बारे में कोई सेवा;

(xii) कोयला, शक्ति, इस्पात या उर्वरकों के उत्पादन, प्रदाय या वितरण से सम्बद्ध किसी स्थापना या उपक्रम में कोई सेवा;

(xiii) किसी तेल क्षेत्र या परिष्करणी में या पेट्रोलियम और पेट्रोलियम उत्पादों के उत्पादन, प्रदाय या वितरण से संबद्ध किसी स्थापना या उपक्रम में कोई सेवाः

(xiv) किसी टकसाल या सुरक्षा मुद्रणालय में कोई सेवा;

(xv) संसद या राज्य विधानमंडलों के निर्वाचन के संबंध में कोई सेवा

(xvi) संघ के कार्यकलाप के संबंध में कोई सेवा, जो पूर्ववर्ती उपखंडों में से किसी में विनिर्दिष्ट सेवा नहीं है;

(xvii) ऐसी कोई अन्य सेवा जो ऐसे विषयों से संबंधित है जिसके बारे में विधि बनाने की शक्ति संसद् को प्राप्त है और जिसे केन्द्रीय सरकार यह राय होने पर कि उसमें हड़ताल किसी लोकोपयोगी सेवा को बनाए रखने पर लोक सुरक्षा पर या सामुदायिक जीवन के लिए आवश्यक प्रदाय और सेवाओं को बनाए रखने पर, प्रतिकूल प्रभाव डालेगी या उसके परिणामस्वरूप समुदाय को गंभीर कष्ट होगा, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए आवश्यक सेवा घोषित करे;

उक्त अधिनियम में हड़ताल को भी परिभाषित किया गया है जो निम्नलिखित रूप में हैः

2(ख) "हड़ताल" से अभिप्रेत है, किसी आवश्यक सेवा में नियोजित रहने के दौरान व्यक्तियों के निकाय द्वारा मिलकर कार्य बन्द करना या कितने ही ऐसे व्यक्तियों का,जो इस प्रकार नियोजित हैं या

नियोजित रहे हैं, कार्य करते रहने से या सौंपे गए कार्य प्रतिगृहीत करने से सम्मिलित रूप से इंकार करना या सामान्य मति से इंकार करना, और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी है,–

केन्द्रीय सरकार को किसी हड़ताल द्वारा किसी आवश्यक सेवा में बाधा पहुँचने की स्थिति में हड़ताल को प्रतिषिद्ध करने की शक्ति है। अधिनियम की धारा 3 में निम्नलिखित प्रावधान किया गया है :

3. (1) यदि केन्द्रीय सरकार का समाधान हो जाता है कि ऐसा करना लोकहित में आवश्यक या समीचीन है तो वह साधारण या विशेष आदेश द्वारा, ऐसी किसी भी आवश्यक सेवा में, जो आदेश में विनिर्दिष्ट हो, हड़तालों को प्रतिषिद्ध कर सकेगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन किया गया आदेश ऐसी रीति से प्रकाशित किया जाएगा जिसे केन्द्रीय सरकार आदेश द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की जानकारी में उसे लाने के लिए सर्वाधिक ठीक समझे।

(3) उपधारा (1) के अधीन किया गया आदेश केवल छह मास तक प्रवृत्त रहेगा, किन्तु यदि केन्द्रीय सरकार का समाधान हो जाता है कि ऐसा करना लोकहित में आवश्यक या समीचीन है तो वह उस आदेश को वैसे ही आदेश द्वारा, छह मास से अधिक किसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी।

(4) उपधारा (1) के अधीन आदेश जारी किए जाने पर–

(क) ऐसी किसी आवश्यक सेवा में, जिसके संबंध में वह आदेश है, नियोजित कोई व्यक्ति न तो हड़ताल पर जाएगा और न हड़ताल पर रहेगाः

(ख) ऐसी किसी सेवा में नियोजित व्यक्तियों द्वारा ऐसे आदेश के जारी किए जाने के पूर्व या पश्चात घोषित या प्रारंभ की गई कोई हड़ताल अवैध होगी।

किसी हड़ताल के प्रतिषिद्ध किए जाने या उसमें भाग लेने वाले व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई हो सकती है और उसे दंडित भी किया जा सकता है। **अधिनियम की धारा 4 और 5 में यह उपबंध किया गया है जो निम्नलिखित हैः–**

4. यदि कोई व्यक्ति,–

(क) ऐसी कोई हड़ताल प्रारंभ करेगा जो इस अधिनियम के अधीन अवैध है, अथवा ऐसी हड़ताल पर जाएगा या रहेगा या उसमें अन्यथा भाग लेगा; या

(ख) ऐसी किसी हड़ताल को प्रारंभ करने के लिए अथवा ऐसी हड़ताल पर जाने के लिए या रहने के लिए या उसमें अन्यथा भाग लेने के लिए अन्य व्यक्तियों को उकसाएगा या उद्दीप्त करेगा;

तो वह उन्हीं उपबंधों के अनुसार अनुशासनिक कार्यवाही किए जाने के लिए (जिसके अन्तर्गत पदच्युति है) दायी होगा जो उसके नियोजन क संबंध में उसे लागू सेवा के निबंधनों (terms) और शर्तों के अधीन किसी अन्य आधार पर ऐसी अनुशासनिक कार्यवाही (जिसके अन्तर्गत पदच्युति है) करने के प्रयोजन के लिए लागू है।

5. यदि कोई व्यक्ति ऐसी कोई हड़ताल प्रारंभ करेगा जो इस अधिनियम के अधीन अवैध है, अथवा ऐसी हड़ताल पर जाएगा या रहेगा या उसमें अन्यथा भाग लेगा, या

(ख) ऐसी किसी हड़ताल को प्रारंभ करने के लिए अथवा ऐसी हड़ताल पर जाने के लिए या रहने के लिए या उसमें अन्यथा भाग लेने के लिए अन्य व्यक्तियों को उकसाएगा या उद्दीप्त करेगा;

तो वह उन्हीं उपबंधों के अनुसार अनुशासनिक कार्यवाही किए जाने के लिए (जिसके अंतर्गत पदच्युति है) दायी होगा। जो उसके नियोजन के संबंध में उसे लागू सेवा के निबंधनों (terms) और शर्तों के अधीन किसी अन्य आधार पर ऐसी अनुशासनिक कार्यवाही (जिसके अंतर्गत पदच्युति है) करने के प्रयोजन के लिए लागू है।

6. यदि कोई व्यक्ति ऐसी कोई हड़ताल प्रारंभ करेगा जो इस अधिनियम के अधीन अवैध है, अथवा ऐसी हड़ताल पर जाएगा या रहेगा या उसमें अन्यथा भाग लेगा, तो वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों सें दंडनीय होगा।

लोक सम्पत्ति के नुकसान के निवारण के लिए लोक सम्पत्ति नुकसान निवारण अधिनियम 1984 पारित किया गया है। उक्त अधिनियम की उद्देशिका में कहा गया है:

"लोक सम्पत्ति के नुकसान के निवारण का और उससे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम"

अधिनियम में लोक सम्पत्ति को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है:

धारा 2 (ख) लोक संपत्ति से अभिप्रेत है ऐसी कोई संपत्ति, चाहे वह स्थावर (अचल) हो या जंगम (चल) (जिसके अन्तर्गत कोई मशीनरी है) जो निम्नलिखित के स्वामित्व या कब्जे में या नियंत्रण के अधीन है:–

(i) केन्द्रीय सरकार ;या

(ii) राज्य सरकार; या

(iii) स्थानीय प्राधिकारी; या

(iv) किसी केन्द्रीय, प्रांतीय या राज्य अधिनियम द्वारा या उसके अधनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित निगम; या

(v) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 617 में परिभाषित कम्पनी ; या

(vi) ऐसी संस्था, समुत्थान या उपक्रम, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे।

परन्तु केन्द्रीय सरकार इस उपखंड के अधीन किसी संस्था, समुत्थान या उपक्रम को तभी विनिर्दिष्ट करेगी जब ऐसी संस्था, समुत्थान या उपक्रम का केन्द्रीय सरकार द्वारा अथवा एक या अधिक राज्य सरकारों द्वारा अथवा भागतः केन्द्रीय सरकार द्वारा और भागतः एक या अधिक राज्य सरकारों द्वारा प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उपबन्धित निधियों द्वारा पूर्णतः या पर्याप्ततः वित्तपोषण किया जाता है।"

लोक सम्पत्ति को नुकसान कारित करने वाली रिष्टि को धारा 3 द्वारा दंडनीय बनाया गया है जो निम्नलिखित उपबंध करती है:

3. **लोक संपत्ति को नुकसान कारित करने वाली रिष्टि**–(1) जो कोई उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रकार की लोक संपत्ति से भिन्न किसी लोक संपत्ति की बाबत कोई कार्य करके रिष्टि करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से दण्डित किया जाएगा।

(2) जो कोई ऐसी किसी संपत्ति की बाबत जो–

(क) कोई ऐसा, भवन प्रतिष्ठान या अन्य संपत्ति है, जिसका उपयोग जल, प्रकाश, शक्ति या ऊर्जा के उत्पादन, वितरण या प्रदाय के संबंध में किया जाता है;

(ख) कोई तेल प्रतिष्ठान है;

(ग) कोई मल संकर्म है;

(घ) कोई खान या कारखाना है;

(ङ) लोक परिवहन या दूर–संचार का कोई साधन है या उसके संबंध में उपयोग किया जाने वाला कोई भवन, प्रतिष्ठान या अन्य संपत्ति है।

कोई कार्य करके रिष्टि करेगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु पांच वर्ष तक की ही सकेगी, और जुर्माने से, दंडित किया जाएगाः

परन्तु न्यायालय ऐसे कारणों से जो उसके निर्णय में लेखबद्ध किए जाएंगे, छह मास से कम की किसी अवधि के कारावास का दंडादेश दे सकेगा।"

धारा 4 में अग्नि या विस्फोट पदार्थ द्वारा लोक सम्पत्ति को नुकसान कारित करने वाली रिष्टि को अधिक मात्रा के दंड से दंडनीय बनाया गया है। उक्त धारा निम्नलिखित है:

"4. अग्नि या विस्फोट पदार्थ द्वारा लोक संपत्ति को नुकसान कारित करने वाली रिष्टि – जो कोई धारा 3 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन कोई अपराध, अग्नि या विस्फोटक पदार्थ द्वारा

करेगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु दस वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दण्डित किया जाएगा :

परन्तु न्यायालय, ऐसे विशेष कारणों से जो उसके निर्णय में लेखबद्ध किए जाएंगे, एक वर्ष से कम की किसी अवधि के कारावास का दण्डादेश दे सकेगा।"

यह ज्ञातव्य है कि सरकारी कर्मचारी भी देश के नागरिक हैं; अतएव उनका यह कर्तव्य है कि वे सार्वजनिक अथवा लोक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें। सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखना अभिव्यक्ति के भीतर केवल सम्पत्ति की भौतिक रूप से सुरक्षा ही नहीं आती है अपितु उसके संव्यवहार में आर्थिक रूप से नुकसान न होने देना भी सम्मिलित है।

एक मामले में यह कहा गया है:

"अनुच्छेद 51क (झ) सभी नागरिकों पर यह दायित्व डालता है कि वे सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें। जहाँ सारे अधिकारियों ने एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जिसके द्वारा ऊँची दर वाले पक्षकार (party) को ठेका दिया और उससे कम दर की निविदा देने वाले पक्षकार की उपेक्षा की जो केवल असम्यक् ही नहीं बल्कि पक्षपातपूर्ण थी वहाँ अधिकारियों ने अनुच्छेद 51क (झ) का उल्लंघन किया था।"[1]

इसी प्रकार यदि सरकारी सेवकों द्वारा अपने कार्य में उपेक्षा अथवा असावधानी बरतने से सार्वजनिक सम्पत्ति के संव्यवहार के बारे में आर्थिक घाटा उठाना पड़ता है तो उनके द्वारा यह इस कर्तव्य का उल्लघंन होगा।

इस प्रकार यह द्रष्टव्य है कि सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखना प्रत्येक नागरिक का सांविधानिक एवं विधिक दायित्व है और उसे नुकसान पहुँचाना अपराध है। उसी प्रकार हिंसा के कार्य भी विधि के अधीन अपराध हैं।

इसके साथ ही हिंसा से विरत रहना हमारे देश की परम्परा और चिन्तन तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं मानकों की अनुरूपता में है तथापि प्रत्येक नागरिक द्वारा इसे अपने एक मूल कर्तव्य के रूप में लेने पर यह एक स्वेच्छा से पालन किया जाने वाला नैतिक आचरण होगा जिससे सार्वजनिक सम्पत्ति अधिकाधिक रूप में सुरक्षित रहेगी और हिंसा का त्याग होगा जिससे भारी मूल्य की सम्पत्तियाँ जो देश में हड़तालों, आदि में उग्र भीड द्वारा यदाकदा नष्ट कर दी जाती हैं अथवा हड़तालों से वस्तुओं का उत्पादन या विनिर्माण रुक जाता है वह नहीं होगा। हिंसा से विरति (अलग रहना) दृढ़ लोक व्यवस्था स्थापित करने में सहायक होगी। इस मूल कर्तव्य का पालन देश में सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ ही लोगों में सद्भावना भाईचारा तथा समरसता एवं राष्ट्रीय भावना की वृद्धि करने में सहायक होगा जो हमारे संविधान का एक उच्च आदर्श और ध्येय है।

अध्याय – 15

उत्कर्ष लाने का प्रयास

यह कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51 क (ञ) में निम्नलिखित रूप में कथित हैः

"व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।

राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक व्यक्तिगत तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष लाने का निरन्तर प्रयास करता रहे। दूसरे शब्दों मे **प्रत्येक व्यक्ति जो भी कार्य करे उसे उत्कृष्ट रूप में करे और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि करने का निरन्तर प्रयास करता रहे।**[1]

भारत में प्राचीन काल से ही व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में उत्कर्ष प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य माना गया है। वेदों और उपनिषदों तथा अन्य साहित्य में मेधा, आयु और यश प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएं हैं। मनुष्य को सद्कर्मों में लगाने को प्रेरित करने को उद्बोधनात्मक उपदेश है। कर्म में कुशलता प्राप्त करने को योग अथवा ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग माना गया है। समाज के लिए कार्य करने को धर्म माना गया है इत्यादि।

इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैंः

ऋग्वेद में कहा गया हैः

उदवुध्यध्वं समनसः सखायः (ऋ0 10/101/1)

(हे एक विचार और एक प्रकार के ज्ञान से युक्त मित्र जनों उठो, जागो।)

निम्नलिखित वैदिक मंत्र (जो गायत्री मंत्र के नाम से प्रसिद्ध है) में सद्बुद्धि प्राप्त करने की कामना की गई है। यह मंत्र इस प्रकार है :

ऊँ भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।। (यजु0 36–3)

(वह परब्रह्म जिसके कारण समस्त विश्व प्रकाशित है और जिसका तेज पूजनीय एवं श्रेष्ठ है, ऐसे परब्रह्म का ध्यान करता हूँ। वे हमारी बुद्धि को प्रेरणा देवें। वह परब्रह्म हमारा सही मार्ग दर्शन करें। हमें सद्बुद्धि दें।)

निम्नलिखित वेद मंत्र (जो मृत्युंजय मंत्र नाम से प्रसिद्ध है) में पूर्णायु प्राप्त करने और यश (सत्कर्मों द्वारा) प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है।

ऊँ त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।। (यजु0 3–60)

हम सुगन्धि (यश) पुष्टि (शारीरिक पुष्टता) की वृद्धि करने वाले शिव की वन्दना करते हैं। हम परिपक्व ककड़ी के फल के समान वृन्त (शरीर) से मुक्त हो जाएं किन्तु अमृत (सद्कार्य नाम, यश) से कभी नहीं।)

निम्नलिखित वेद मंत्र में श्रेष्ठ विचारों को प्राप्त करने की कामना की गई है।

आनो भद्राः क्रतवो यन्तुव्विश्वतः। (यजु0 25–14)

(विश्व में किसी स्थान पर स्थित भद्र (श्रेष्ठ) विचार हमें प्राप्त होवें।)

पुनः कहा गया हैः

भद्रङ्कर्णोभिः शृणुयामदेवा भद्रं

पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।। स्थिरैरङ्गस्तुष्टुवां

सस्तनूभिव्वर्यशेमहि देवर्हितं यदायुः।। (रुद्राष्टाध्यायी आमुख 1–8)

(हे देवगण ! (हमारी कामना है कि) हम कानों द्वारा श्रेष्ठ विचार ही सुनें आँखों द्वारा श्रेष्ठ बातों को ही देखें, स्थिर पुष्ट अंगों द्वारा (स्वस्थ शरीर से) हम आयुपर्यन्त श्रेष्ठ वाणी द्वारा आपकी स्तुति करते हुए आपको तुष्ट करें)

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।। (कठोपनिषद् 3–14)

((हे मनुष्यों उठो, जागो (सावधान होओ) और श्रेष्ठ महापुरुषों के पास जाकर उनसे परम ज्ञान को प्राप्त करो)

वेद में कहा गया हैः

चरैवेति, चरैवेति

(चलते रहो, चलते रहो।)

उपर्युक्त की व्याख्या के रूप में उपनिषद् में कहा गया हैः

सत्यंवद। धर्मंचर। स्वाध्यायान्माप्रमदः।। (तैत्तिरीयोपनिषद् 11–1)

((सदा) सत्य भाषण करो, धर्म (कर्तव्य एवं सदाचार) का पालन करो। स्वाध्याय में आलस्य मत करो, अर्थात् स्वाध्याय करते रहो)

श्रीमद्भगवद् गीता कर्म में कुशलता प्राप्त करने को ही योग कहती हैः

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। (2–50)

((हे अर्जुन) समत्व बुद्धि–युक्त पुरुष पुण्य पाप दोनों को इस लोक में त्याग देता है अर्थात् उनमें लिप्त नहीं होता। इसलिए उसके लिए (समत्व बुद्धि के लिए) यत्न कर, कर्म में कुशलता ही योग है।)

इस प्रकार उक्त कर्तव्य भारतीय परम्परा और संस्कृति का अंग है। आधुनिक काल में भी उस परम्परा और संस्कृति से प्रेरित मनुष्यों के जीवन में इस कर्तव्य का पालन और आचरण विद्यमान है। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों के माध्यम से उक्त कर्तव्य की व्याख्या की है और उसे लागू करते हुए निर्णय दिए हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख किया जा सकता है।

एक मामले में कहा गया थाः

"संविधान के अनुच्छेद 51क (ञ) के अधीन हम सबका अपने प्रति यह कर्तव्य है कि हम व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कृष्टता की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करते रहें जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ती हुई प्रगति और उपलब्धि की नई ऊंचाईयों को छू लें। जब राज्य उत्कर्ष को बढाने का कार्य हाथ में लेता है तो वह संविधान द्वारा अनुज्ञेय तरीकों के माध्यम से ही ऐसा कर सकता है। **चाटुकारिता को पुरस्कृत करना दक्षता और उत्कर्ष की वृद्धि को पीछे धकेलने का कार्य करता है।"**[1]

एक अन्य मामले में कहा गया :

"अनुच्छेद 51क (ञ) के प्रवाधानों को देखते हुए अपने वृत्ति, धंधे अथवा काम–धाम में उत्कर्ष प्राप्त करने के अधिकार को समान अवसर की संकल्पना में सम्मिलित किया जाना चाहिए।"[2]

एक दूसरे मामले में कहा गया :

"संविधान के अनुच्छेद 16 के अधीन गारंटीकृत अधिकार किसी लोक सेवक को यह लाइसेंस नहीं देता कि वह लोक प्रशासन में कोई ठहराव उत्पन्न करे, जो लोकहित के प्रतिकूल हो और न ही इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि वह अनुच्छेद 51क (ञ) मे अनुकल्पित कर्तव्य को भंग करे।"[1]

एक और मामले में कहा गया :

विश्वविद्यालय के अध्यादेश, विनियम (Regulation) और अन्य कानूनी प्रावधानों को जो अनुच्छेद 51क (ञ) के समादेश की पूर्ति करते हैं उनका अर्थान्वयन उदारता से किया जाना चाहिए और उन्हें कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए जिससे वे प्रभावी रूप से अपने प्रयोजन की पूर्ति कर सकें।[2]

उच्चतर सिविल सेवाओं के लिए चयन किए गए व्यक्तियों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम इस कर्तव्य की अनुरूपता में है।

उच्चतम न्यायालय ने मोहन कुमार सिंहानिया ब0यूनियन आफ इंडिया [3] में मत व्यक्त किया : "इस संबंध मे भाग IVक में "मूल कर्तव्य" शीर्षक के अधीन अनुच्छेद 51क के प्रति निर्देश उचित होगा जो स्वर्ण सिंह कमेटी की सिफारिश के अनुसार संविधान (बयालीसवां) संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था। उक्त अनुच्छेद संविधान का एक समादेश धारण करता है कि खंड (क) से (ञ) में विहित विभिन्न बातों को करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा। उन खंडों में खंड (ञ) यह समादेश देता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है की वह व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाईयों को छू सके।

हमारी राय में चयन किए गए व्यक्तियों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम, जिससे कि उच्चतर सिविल सेवा जो कि जिस देश की सर्वोच्च सेवा है, व्यर्थ न जाए और प्रशिक्षण अवधि के दौरान निष्फल न हो, को सर्वाधिक महत्त्व देने में सरकार का प्रयास अनुच्छेद 51क (ञ) की अनुरूपता में है।"

यह उल्लेखनीय हे कि सरकार द्वारा अयुक्तियुक्त आरक्षण इस कर्तव्य के उल्लंघन में है।

उच्चतम न्यायालय ने एम्स स्टूडेन्ट्स यूनियन ब. एम्स एन्ड अदर्स [1] में कहा है कि:

"अनुच्छेद 51 क में यथा परिभाषित मूल कर्तव्य जिस रूप में वे हैं, न्यायालय की रिट द्वारा लागू किए जाने योग्य नहीं हैं किन्तु इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि भाग IVक के अनुच्छेद 51क में "कर्तव्य" के पहले "मूल" का प्रयोग किया गया है जिसका प्रयोग कि संविधान निर्माताओं द्वारा भाग III में अधिकारों के पहले किया गया था। भारत का प्रत्येक नागरिक इसके लिए मूल रूप से बाध्य है कि वह वैज्ञानिक मनोवृत्ति और मानववाद विकसित करे। वह मूल रूप से कर्तव्यबद्ध है कि सभी व्यक्गित तथा सामूहिक कार्यक्षेत्रों में उत्कर्ष लाने का निरन्तर प्रयास करे ताकि राष्ट्र प्रगति और उपलब्धियों के नए शिखर छूता जाए। राज्य सारे नागरिकों का सामूहिक रूप है और इसलिए यद्यपि अनुच्छेद 51क अभिव्यक्त रूप से राज्य पर कोई मूल कर्तव्य नहीं डालता किन्तु यह तथ्य रहता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है। कोई आरक्षण संविधान की कसौटी पर खरा उतरने के साथ ही अनुज्ञेय होने के लिए युक्तियुक्त होना चाहिए। युक्तियक्तता का आकलन करने में विचार में ली जाने वाली एक बात यह होगी–कि क्या आरक्षण का स्वरूप और मात्रा उत्कर्ष के अन्तिम लक्ष्य को जो राष्ट्र को निरन्तर नए–नए शिखर छूने को समर्थ बनावे को रोकेगा अथवा बढ़ाएगा। वैश्वीकरण के युग में जहाँ समग्ररूप मे राष्ट्र को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए विश्व के अन्य राष्ट्रों से प्रतियोगिता करनी है उत्कर्ष को अयुक्तियुक्त रूप में विदाई नहीं दी जा सकती है और इससे इसकी समग्रता में समझौता निश्चित ही नहीं किया जा सकता है। मूल कर्तव्य यद्यपि न्यायालय की रिट द्वारा लागू नहीं किए जा सकते हैं तथापि वे सांविधानिक और कानूनी मुद्दों के अर्थान्वयन (interpretation) के लिए एक बहुमूल्य मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करते हैं। सन्देह अथवा चयन के मामले में अनुच्छेद 51क द्वारा प्रकट लोगों की इच्छा केवल मुद्दे के समाधान के लिए ही मार्गदर्शक नहीं बन सकती अपितु न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले उपचार के निर्मित करने अथवा गढ़ने में भी वही काम कर सकती है। मूल कर्तव्य का सांविधानिक अधिनियमन का यदि कोई अर्थ होता हो तो राज्य के कार्यों के सांविधानिक मूल्यों से हटने पर न्यायालयों द्वारा उस पर अंकुश लगाया जा सकता है।"

अध्याय — 16

बालकों को शिक्षा का अवसर प्रदान करना

पीछे यह उल्लेख किया गया है कि संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा मूल कर्तव्यों की सूची में एक और कर्तव्य (ट) जोड़ा गया था। वह निम्नलिखित हैः–

"यदि नागरिक माता–पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।"

इस कर्तव्य के संबंध में यह कथनीय है कि प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में संतान को शिक्षा देना एक पुनीत कर्तव्य माना गया हैं। मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानते हुए उसके जीवन को चार भागों में, जिन्हें आश्रम कहा जाता है, विभाजित किया गया थाः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य का कर्तव्य विद्याध्ययन होता था। दूसरे यह मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति के जन्म लेने के साथ ही उस पर चार ऋण होते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख हैः

ऋणं ह वै जायते जोऽस्ति। सजायमानएव

देवेभ्यः, ऋषिभ्यः, पितृभ्योः मनुष्येभ्यः।। (1.7.2.9.)

(जो विद्यमान है वह जन्म के साथ ही देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं मनुष्यों का ऋणी होता है।)

वह भिन्न–भिन्न अनुष्ठानों एवं कार्यों के सम्पादन द्वारा इन ऋणों से मुक्त होता है। पिता के ऋण से वह सुयोग्य पुत्र अर्थात् सुपुत्र उत्पन्न करके मुक्त होता है। **बौधायन ने कहा हैः**

सत्पुत्रमुत्पाद्याऽत्मानं तारयति।

सप्तावरान्सप्त पूर्वान्षडन्यानात्मसपुमान।।

सत्पुत्रमधिगच्छानस्तारयत्येनसो भयात्।

तस्मात्प्रजासंतानमुत्पाद्य फलमवाप्नोति।। (7,6,16, 8–10)

(एक सद्गुणी पुत्र को उत्पन्न करके पिता पारलौकिक लाभ प्राप्त करता है। जो सद्गुणी पुत्र प्राप्त करता है वह सात पीढी तक अपने वंशजों को और सात पीढी तक अपने पूर्वजों को (प्रत्येक में छः, स्वयं अपने सातवां होता हुआ) पाप के भय से मुक्त कर देता है)

यह **उल्लेखनीय है कि सद्गुणी पुत्र के अर्थ में उसका सुशिक्षित होना भी सम्मिलित है।**

नीतिग्रंथों में भी संतान को शिक्षा देना एक कर्तव्य बनाया गया है। उनमें संतान को शिक्षा देने के महत्त्व को दर्शित किया गया है। यह कहा गया हैः

माता शत्रु पिता बैरी, येन बालो न पाठितः।

न हि शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा।।

(वह माता बैरी है और पिता शत्रु है जो बालक को नहीं पढ़ाते हैं। वह किसी सभा में वैसे ही शोभा नहीं पाता है जैसे हंसों में बगुला।)

इस प्रकार भारतीय समाज में प्रचीन काल से ही संतान को शिक्षित बनाना एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य बनाया गया है।

भारतीय संविधान में राज्य को यह निर्देश दिया गया था कि वह बालकों को चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करे। संविधान के भाग 4 'राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व' में अनुच्छेद 45 में यह उपबंध था : "राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपंबध करने का प्रयास करेगा।"

अब इस उपबंध के स्थान पर एक नया उपबंध स्थापित किया गया है जिसका आगे उल्लेख किया जाएगा।

यह द्रष्टव्य है कि राज्य अपने इस दायित्व का पालन करने में असफल रहा है। जहाँ तक इस संबंध में नागरिकों का दायित्व है, हिन्दुओं में विधि द्वारा बालकों को शिक्षा देने का दायित्व माता–पिता पर डाला गया है। **हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण–पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 20 यह उपबंध करती है:**

20–**बालकों और वृद्ध जनकों का भरण–पोषण (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए कोई हिन्दू अपने जीवन काल के अभ्यन्तर अपने औरस या जारज बालकों और वृद्ध या दुर्बल जनकों का भरण–पोषण करने के लिए बाध्य है।**

(क) जब तक कि औरस या जारज बालक अवयस्क रहे, वह अपने पिता या माता से भरण–पोषण पाने के लिए दावा कर सकेगा।

'भरण–पोषण' को उक्त अधिनियम की धारा 3 (ख) में अग्रलिखित प्रकार परिभाषित किया गया है:–

(ख) भरण–पोषण के अंतर्गत–

(एक) सब अवस्थाओं में भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और चिकित्सीय परिचर्या और इलाज के लिए संभार।

(दो) अविवाहित पुत्री की स्थिति में उसके विवाह के युक्तियुक्त और प्रांसगिक व्यय भी हैं। अवयस्क को धारा 3 (ग) में निम्नलिखित प्रकार परिभाषित किया गया है:

(ग) **'अवयस्क' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अपनी आयु के अठारह वर्ष पूरे नहीं किए हैं।**

इस प्रकार माता अथवा पिता अपने अवयस्क पुत्र या पुत्री को उसके 18 वर्ष तक की आयु तक शिक्षा दिलाने को विधितः बाध्य हैं। दूसरी ओर, यह अवस्यक का अधिकार भी है जिसे न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है। माता–पिता का यह कर्तव्य है और अवयस्क का यह अधिकार भी है। यह अधिकार माता या पिता के पास सम्पत्ति होने पर आश्रित नहीं है। वे प्रत्येक स्थिति में अवयस्क पुत्र या पुत्री को शिक्षा देने को बाध्य हैं।

संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002, से जिसके द्वारा बालकों को शिक्षा दिलाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य बनाया गया है, संविधान के दो अन्य उपबंधों का संशोधन किया गया है जिससे बालकों को शिक्षा दिलाना सुनिश्चित किया जा सके।

पहला संशोधन यह है कि मूल **अधिकारों के अध्याय में एक नया अनुच्छेद 21क अंतःस्थापित किया गया है, जो निम्नलिखित उपबंध करता है:–**

"21 क– **राज्य छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति से, जो राज्य विधि द्वारा अवधारित करे, उपबंध करेगा।"**

इस प्रकार राज्य के लिए विधि द्वारा वह रीति अवधारित करना जिसमें छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाए, बाध्यकर है।

दूसरे इसके मूल अधिकार होने से शिक्षा पाने के लिए पात्र बालक की ओर से उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल कर इसे लागू करने की कार्रवाई करवायी जा सकती है।

जैसा पहले कहा गया है उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों के अनुच्छेद 45 का भी संशोधन किया गया है। अनुच्छेद 45 जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद अंतःस्थापित किया गया है:

"45 राज्य सभी बालकों के लिए छह वर्ष तक की आयु पूरी करने तक, प्रारंभिक बाल्यावस्था देखरेख और शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।"

इस प्रकार का उपबंध बालकों के लिए छह वर्ष की आयु तक देखरेख और शिक्षा देने के लिए उपबंध करना राज्य की नीति का एक निदेशक तत्त्व बनाता है।

अब छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पाना उनका मूल अधिकार भी हो गया है।

हिन्दू दत्तक और भरण–पोषण अधिनियम द्वारा माता–पिता पर बालकों के वयस्क होने अर्थात् अठारह वर्ष तक की आयु के होने तक शिक्षा दिलाने का दायित्व डाला गया है।

इस प्रकार माता–पिता या संरक्षक द्वारा बालकों को शिक्षा के अवसर प्रदान करने का मूल कर्तव्य सांविधानिक तथा विधिक उपबंधों द्वारा भी सुनिश्चित किया गया है।

यह कर्तव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह देश में लोकतंत्र के समुचित रूप से कार्यकरण और भावी पीढ़ी को सुयोग्य नागरिक बनाने के साथ ही उनकी नैतिक और बौद्धिक उन्नति के लिए अपेक्षित है।

अध्याय – 17

मूल कर्तव्यों की प्रकृति और महत्त्व

मूल कर्तव्य संविधान के एक बहुत आवश्यक अंग की पूर्ति करते हैं। वे नागरिकों के मानसिक, बौद्धिक और नैतिक विकास के साथ ही देश की एकता और अखंडता के हित में है। मूल कर्तव्यों को संविधान में शामिल करने के लिए संविधान के संशोधन पर बहस के दौरान इस में भाग लेने वाले प्रायः सारे सदस्यों ने भिन्न–भिन्न दृष्टियों से इसकी उपादेयता और आवश्यकता के पक्ष में मत व्यक्त किया। ऐसे कुछ मतों का उल्लेख किया जा सकता हैः

इस सम्बन्ध में लोक सभा के सदस्य श्री वसंठ साठे ने कहाः

"अन्य राष्ट्रों की सभ्यताएं चली गई हैं। केवल हमारे राष्ट्र के पास कतिपय आधारभूत मूल्य हैं। उन आधारभूत मूल्यों को हम संविधान में भी समाविष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन कर्तव्यों का सर्वाधिक सुन्दर रूप में प्रारूपण किया गया है और ये उस से भिन्न हैं जो स्वर्ण सिंह कमेटी से आया था। जिसने भी इसका प्रारूपण किया है, जिस हाथ ने भी इसको लिखा है मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ और उसे बधाई देना चाहता हूँ कि वे सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य हैं जिन्हें लागू किया जाना है। ये मार्गदर्शक हैं, वे आचरण की संहिता हैं जिसे प्रत्येक नागरिक को बचपन से ही मस्तिष्क में रखना है। अन्य बातों का विनिश्चय करते समय यह भी एक मार्गदर्शक अथवा संकेत देने वाला हो सकता है।"[1]

राज्य सभा में संविधान के उक्त संशोधन पर बहस में भाग लेते हुए विधि मंत्री श्री एच.आर. गोखले ने कहा था :–

(संविधान में) एक और अध्याय जोड़ा जा रहा है जो संविधान में पूर्णतया एक नया प्रावधान है। कदाचित् यह इस अर्थ में नया है कि यह विश्व के अनेक अन्य संविधानों में विद्यमान नहीं है। यह कुछ में विद्यमान है, किन्तु विश्व के अनेक अन्य संविधानों में नहीं है। यह अध्याय नागरिकों के मूल कर्तव्यों के संबध में है। अब तक प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता रहा है कि व्यक्ति के अधिकारों पर जोर दिया गया है। किसी राजनीतिक प्रणाली का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग यह है कि वहाँ कर्तव्यों का, यदि अधिक नहीं तो वही महत्त्व होना चाहिए, अनदेखा किया गया था। इसलिए प्रस्तावित नया अध्याय दस कर्तव्यों की एक सूची को रखता और उल्लिखित करता है जो नागरिकों के मूल कर्तव्य हैं और जो यद्यपि सम्प्रति शास्तियों द्वारा लागू होने योग्य बनाए जाने के लिए प्रस्तावित नहीं हैं, किन्तु वे मेरे विचार में उतने ही मूल हैं जितना संविधान का कोई अन्य प्रावधान मूल है। प्रस्तावित संशोधनों का यह एक अन्य बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू है।[1]

राज्य सभा के सदस्य श्री जगन्नाथ भारद्वाज ने इस संबंध में कहाः "मेरे विचार में मूल कर्तव्य के जोड़ने का सब जगह, पूरे देश में स्वागत किया गया है। इसकी कुछ आलोचना भी हुई है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अनावश्यक है, किन्तु मैं सोचता हूँ कि यह अनावश्यक नहीं है और यह एक आवश्यक भाषा थी। वस्तुतः यह कोई नई बात नहीं है। **बुद्ध के दस नियम बहुत उपयोगी थे। उन्होंने लोगों के नैतिक बल को उठाया। अशोक को उन दस सिद्धांतों जैसे "तुम चोरी नहीं करोगे", "तुम परस्त्रीगमन नहीं करोगे" को अपनाना पड़ा। इस प्रकार बुद्ध के नियम हमारे देश का बहुत भला कर सके।**

मूल कर्तव्य बिल्कुल उन नियमों की तरह हैं। विद्यालयों में अपने बच्चों को शिक्षा देने में उनका शिक्षात्मक मूल्य होगा (यदि हम उन्हें अपनी पाठ्य पुस्तकों में रख दें तो)। उसका यह परिणाम होगा कि हमारे राष्ट्रीय चरित्र के स्तर में बहुत सुधार होगा। इसलिए यह बहुत स्वागत योग्य कार्रवाई है और मैं मूल कर्तव्य के निर्माताओ को और उनके संविधान में सम्मिलित किए जाने को बधाई देता हूँ।[2]

इसी प्रकार संसद् के और माननीय सदस्यों द्वारा मूल कर्तव्यों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया।

अनेक मामलों में न्यायालयों ने भी मूल कर्तव्यों की प्रकृति और महत्त्व पर प्रकाश डाला है। यह कहा गया है कि अनुच्छेद 51क में उल्लिखित मूल कर्तव्य नागरिकों को सम्बोधित हैं। उसके ये कर्तव्य राज्य, देश और राष्ट्र के प्रति हैं।[3]

अनुच्छेद 51क को मामूली तौर पर नागरिकों के कर्तव्य कहा जा सकता है किन्तु वस्तुतः यह नागरिकों का अधिकार है क्योंकि यह नागरिक को अधिकार प्रदान करता है कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय में जा सके कि राज्य अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी पूर्वक कर रहा है और आज्ञापक तथा प्राथमिक कर्तव्यों का पालन देश की विधि के अनुसार हो रहा है।[4]

जहाँ एक दांडिक मामले में कई दिनों तक कोई लोक अभियोजक नियुक्त नहीं किया जा सका जिसके कारण अभियुक्त को बिना किसी उपयोगी प्रयोजन के कई बार न्यायालय में हाजिर होना पड़ा न्यायालय द्वारा यह कहा गया कि संबंधित प्राधिकारियों द्वारा लोक अभियोजक को नियुक्त न करने से अनुच्छेद 51क में अन्तर्विष्ट मूल कर्तव्यों को भंग किया गया है।[1]

एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा :

"अनुच्छेद 51क में नागरिकों को आदिष्ट मूल कर्तव्यों को निर्वाचित अथवा अनिर्वाचित संस्थाओं और नगर पालक निकायों को सम्मिलित करते हुए नागरिकों के संगठनों के विधायी और कार्यपालक कार्यों में मार्गदर्शक होना चाहिए।" [2]

इस प्रकार मूल कर्तव्य नागरिकों और देश दोनों की सर्वांगीण उन्नति के लिए परिकल्पित हैं और उनका पालन किया जाना चाहिए।

अध्याय – 18

मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता (लागू किया जाना)

अध्याय तीन में मूल अधिकारों का विवेचन करते समय यह लिखा गया है कि मूल अधिकारों का प्रवर्तन करने अथवा लागू करने के लिए उसी भाग में एक विशेष उपबंध किया गया है और इसका अधिकार उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया है। यह उल्लेखनीय है कि उक्त उपबंध के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ने न केवल मूल अधिकारों को लागू किया है किन्तु निर्वचन द्वारा उनका विस्तार भी किया है और उसके अधीन लोक हितवाद की अधिकारिता का सृजन किया है जिसके द्वारा सरकार के सांविधानिक और कानूनी दायित्वों को पूरा करने के लिए उसे बाध्य किया जा सकता है।

मूल कर्तव्यों को प्रवर्तित अथवा लागू करने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। यह स्पष्ट है कि कर्तव्यों को प्रवर्तित करने का माध्यम अनुशास्तियां हो सकती हैं जो कर्तव्यों के अपालन की दशा में अधिरोपित की जा सकती हैं। ऐसी कोई अनुशास्ति न तो संविधान में है न ऐसी अनुशास्ति अधिनियमित करने की शक्ति देने वाला कोई उपबंध किया गया है। इसलिए मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता के बारे में यह संदेह होना स्वाभाविक है कि ऐसे उदात्त लक्ष्यों को सम्मिलित करने वाले उपबंधों की प्रवर्तनीयता न होने पर उनका क्या मूल्य होगा?

यह प्रश्न मूल कर्तव्यों को अधिनियमित करते समय उठा था और संसद् में माननीय सदस्यों द्वारा इस बारे में मत व्यक्त किए गए थे। इनमें से कुछ का उल्लेख करना समीचीन होगा।

लोक सभा के एक सदस्य वी0आर0आर0 वरदराजा राव ने मत व्यक्त किया थाः

"जहाँ तक मूल कर्तव्यों का संबंध है, मैं नहीं कहूँगा "आपने शास्तियों के लिए खंड आदि को क्यों हटा दिया है? स्पष्टतः इसे आप शास्तियों द्वारा लागू नहीं कर सकते, किन्तु ऐसा कोई खंड होना चाहिए जिसमें यह कहा गया हो कि सरकार इसके लिए प्रयत्न करेगी, राज्य अपने वश में सारे साधनों, जैसे व्यापक प्रचार, शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम और ऐसे बहुत से रास्ते हमारे लिए खुले हैं, के प्रयोग द्वारा कर्तव्यों के मूल्यों के बारे में शिक्षित करेगी। राज्य पर यह दायित्व डाला जाना चाहिए कि मूल कर्तव्य इस देश के लोगों के मस्तिष्क, हृदय और सोच में लिख जाएं, अन्यथा यह ऐसे दिखाई देता है कि यह अध्याय हवा में लटका हुआ है इन्हें लागू करने के बारे में कुछ होना चाहिए।" [1]

लोक सभा के एक अन्य सदस्य सरदार स्वर्ण सिंह सोखी ने कहाः–

मैंने 29वें अमेंडमेंट में यह इंसर्ट करने के बारे में कहा हैः–

"Violation of any fundamental duty shall be punishable under the Indian Penal Code."

यह नयी क्लॉज़ इंसर्ट करना मुनासिब होगा। इसको मेहरबानी करके बहुत ध्यान से देखें और इसको इसमें जोड़ें। इसकी वजह यह है कि अगर हम लोग समझते हैं कि लोग अपनी ड्यूटीज़ अपने आप समझने लगेंगे और उन पर अमल करने लगेंगे तो इन ड्यूटीज़ को रखने की जरूरत ही क्या थी। एक बात मैं जो कांग्रेस कमेटी के चेयरमैन थे, उनकी रिपोर्ट से पढ़ कर सुनाना चाहता हूँ। फण्डामेंटल ड्यूटीज की मैं बात कर रहा हूँ।

"So far as their enforcement is concerned, in the first stage I think the people should get accustomed to understand that they are the duties. After some time a stage in our evolution might be reached when it may be necessary even to have potential provision to punish any delinquent who fails to observe the duties."

This is what has been mentioned in Swaran Singh Committee's Report.

यह जो चीज है इसके लिए हमें इस बिल में सुधार करना जरूरी है इस चीज को इनमें इंसर्ट करना चाहिए और इसको करने में टाइम वेस्ट नहीं करना चाहिए।

"मेरा सुझाव जो है वह यह है कि इसको आप पीनल कोड में लाएं।"[2]

राज्य सभा में मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन पर बहस के दौरान उसके सदस्य श्री बी. एन. बनर्जी ने कहा:"

"मूल कर्तव्यों के बारे में केवल एक शब्द कहूँगा। यहाँ हम मूल कर्तव्यों को केवल गिना रहे हैं। श्री गोखले ने सावधानी बताई है और मैं उस सावधानी को दुहराऊंगा। यदि नागरिक संविधान में अधिकथित मूल कर्तव्यों के प्रति समादर नहीं दिखाते या केवल नाम मात्र का समादर दिखाते हैं तो संविधान अथवा संसद् विधि द्वारा मूल कर्तव्यों के उस भाग को दंडनीय बनाएगा। किन्तु इसे भूला नहीं जाना चाहिए। मूल कर्तव्य मात्र केवल ऐसे ही बने रहने के लिए नहीं हैं। किन्तु यह आशा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति मूल कर्तव्यों का पालन करेगा और राज्य के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि उन्हें दांडिक अथवा दंडनीय बनाए।"[1]

तथापि, जैसा पहले कहा गया है, मूल कर्तव्यों को विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं बनाया गया है।

मूल कर्तव्यों की उपादेयता और उसके पालन की अनिवार्यता की दृष्टि से उच्चतम न्यायालय ने प्रकारान्तर से उन्हें लागू करना प्रारम्भ कर दिया है। उच्चतम न्यायालय के ऐसे सारे निर्णयों के प्रति निर्देश विभिन्न कर्तव्यों का विवेचन करते समय किया गया है। यहाँ संक्षेप में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण का हवाला दिया जा सकता है।

"उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों एवं विनियामक उपबंधों में संतुलन करने के लिए भारत के संविधान के उपबंधों का निर्वचन या तो राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों, जैसा के भारत के संविधान के भाग IV में अन्तर्विष्ट है अथवा मूल कर्तव्यों जैसा कि भाग 51क में अधिकथित है, की दृष्टि अथवा दोनों ही दृष्टियों में किया है"

इस दृष्टि से उच्चतम न्यायालय ने मत व्यक्त किया है "भारत के राष्ट्रीय ध्वज को फहराने का अधिकार कतिपय निर्बन्धनों के अधीन है जिन्हें भाग 4क में पाया जा सकता है। यह प्रश्न कि अनुच्छेद 51क न्याय अथवा प्रवर्तनीय नहीं है महत्त्व का नहीं है।"[2]

उच्चतम न्यायालय ने मूल कर्तव्यों को विधि के उपबंधों के निर्वचन के वाह्य सहायक के रूप में लिया है। एक कानूनी नियम में अन्तर्विष्ट निर्बन्धनों को मूल कर्तव्यों (अनुच्छेद 51क के खंड (ञ)) की अनुरूपता में अभिनिर्धारित किया गया है। [3]

मूल कर्तव्यों के उल्लंघन में किए जाने वाले कार्य के विरुद्ध फाइल किए गए पिटीशन को न्यायालय ने ग्रहण किया है। एक मामले में एक संस्था द्वारा न्यायालय में पिटीशन फाइल कर उसकी जानकारी में यह बात लाई गई कि मसूरी की पहाड़ियों में पत्थर की खदान से स्थानिकी का असन्तुलन हो रहा है। उच्चतम न्यायालय ने पिटीशनर के इस कार्य की सराहना की और पिटीशनर को उत्तर प्रदेश सरकार से 10,000 रुपये खर्चे की बाबत दिलाए। [1]

उच्चतम न्यायालय ने एम्स स्टूडेन्ट्स यूनियन ब0 एम्स् एन्ड अदर्स [1] में कहा कि अनुच्छेद 51क में यथा परिभाषित मूल कर्तव्य जिस रूप में वे हैं, न्यायालय की रिट द्वारा लागू किए जाने योग्य नहीं हैं। किन्तु इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि भाग IV क के अनुच्छेद 51क में कर्तव्य के पहले "मूल " का प्रयोग किया गया है जिसका प्रयोग संविधान निर्माताओं द्वारा भाग III में अधिकारों के पहले किया गया था। भारत का प्रत्येक नागरिक इसके लिए मूल रूप से बाध्य है .....''

उक्त निर्णय में आगे कहा गया है :

"मूल कर्तव्य यद्यपि न्यायालय की रिट द्वारा लागू नहीं किए जा सकते हैं तथापि वे संविधान और कानूनी मुद्दों के अर्थान्वयन के लिए बहुमूल्य मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करते हैं। सन्देह अथवा चयन करने के मामले में अनुच्छेद 51क द्वारा प्रकट लोगों की इच्छा केवल मुद्दे के समाधान के लिए मार्ग दर्शक ही नहीं बन सकती है अपितु न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले उपचार निर्मित करने अथवा गढने में मार्गदर्शन का काम भी कर सकती है। मूल कर्तव्यों का यदि कोई अर्थ होता है तो सांविधानिक मूल्यों से राज्य के हटने पर न्यायालयों द्वारा राज्य की कार्रवाई पर अंकुश लगाया जा सकता है।"[2]

इस प्रकार न्यायालयों ने संविधान अथवा विधियों के निर्वचन के माध्यम से मूल कर्तव्यों को प्रवर्तित अथवा लागू करना प्रारम्भ कर दिया है और जैसा कि पुस्तक के अन्य अध्यायों में उल्लिखित उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से प्रतीत होगा, उन्होंने अनुच्छेद 51क के प्रति निर्देश से उसमें उल्लिखित कर्तव्यों को लागू किया है।

अध्याय – 19

मूल कर्तव्यों के व्यापक प्रचार की आवश्यकता

मूल कर्तव्यों की प्रवर्तनीयता के संबंध में पिछले अध्याय में लिखा गया है। वे न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। तथापि न्यायालयों ने विधिक उपबंधों के अर्थान्वयन (interpretation) में उनकी सहायता लेना प्रारंभ कर दिया है और कतिपय प्रकार के कार्यकलापों को मूल कर्तव्यों के उल्लंघन में होने के कारण उन्हें अविधिमान्य माना है। पिछले अध्यायों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख किया गया है।

मूल कर्तव्यों के पालन हेतु प्रथमतः उनका व्यापक प्रचार–प्रसार आवश्यक है। मूल कर्तव्यों के संबंधी संशोधन विधेयक पर संसद् में बहस के दौरान इस पर अनेक सदस्यों द्वारा जोर दिया गया थाः

लोक सभा के सदस्य श्री नाथू राम अहिरवार ने कहाः

"जनता को आज यह महसूस होना चाहिए कि हमारा अधिकार होता है तो हमारा कर्तव्य भी होना चाहिए, जब हम स्कूल में पहुँचते थे तो कहा करते थे कि देश के प्रति वफादार रहेंगे। हमें स्कूल के बच्चों को कर्तव्य सिखाना चाहिए, उन्हें स्कूल में प्रार्थना के वक्त प्रतिदिन स्मरण करना चाहिए कि उनके देश के प्रति कर्तव्य क्या है और उन्हें देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाना है। जब तक देश का नागरिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं रहेगा, हमारा देश आगे नहीं बढ़ सकता है।"[1]

लोक सभा के ही सदस्य श्री कमला मिश्र मधुकर ने अपने भाषण में कहाः

"इस प्रकार की शिक्षा आपको अपने बच्चों को यहाँ भी दी जानी चाहिए। ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे वे अपने कर्तव्यों से परिचित हों और उनका पालन भी करें।"[2]

लोक सभा के सदस्य श्री शंकर दयाल सिंह ने कहाः

"इसलिए आपने जो नया चैप्टर बनाया है मूल कर्तव्यों का उस संबंध में यह कहना चाहूँगा कि सारे स्कूलों, कालेजों और विद्यालयों में आवश्यक रूप से उस की पढ़ाई होनी चाहिए, सब जगह वह टंगा रहना चहिए जिससे लोगों को उस का ज्ञान रहे।"[3]

लोक सभा के सदस्य श्री इन्दर जे. मल्होत्रा ने कहाः

मैं यह सुझाव दूंगा कि यह पहली बार है कि हम मूल कर्तव्यों को संविधान में स्थान दे रहे हैं, जो देश के सामने हैं। इन मूल कर्तव्यों का संभवतम विस्तृत प्रचार किया जाना चाहिए विशेष रूप से शिक्षा संस्थाओं और अन्य ऐसी संस्थाओं में जिसमें हमारी भावी पीढियों को बचपन से ही मूल कर्तव्यों का बोध रहे।"[1]

मूल कर्तव्यों संबंधी संशोधन पर संसद् में बहस के अपने समापन भाषण में तत्कालीन विधि मंत्री श्री एच.आर गोखले ने मत व्यक्त कियाः

"वस्तुतः जैसा मैंने पिछले दिन कहा, जब ये मूल कर्तव्य अंगीकार कर लिए जाते हैं, तो यह राज्यों का कर्तव्य होगा कि वे यह सुनिश्चित करें कि हमारी शिक्षा प्रणाली में प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक प्रक्रम पर इन कर्तव्यों का शिक्षण दिया जाता है। अब आप राजनीतिक आदर्शों की बात करते हैं तो आप विद्यार्थियों से केवल यह बात नहीं कहते हैं कि स्वतंत्रता संघर्ष ही हमारा कर्तव्य है। आप विद्यार्थियों को बताते हैं कि ये आदर्श क्या हैं। यह स्वभाविक रूप से उस क्रम में आता है। प्रत्येक अध्यापक को, विद्यार्थी को अपने स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का, उन आदर्शों और उद्देश्यों को जिसके लिए स्वतंत्रता संघर्ष हुआ था और इस प्रकार स्वतंत्रता किस प्रकार हमारे देश के लोगों द्वारा, हमारे नेताओं द्वारा प्राप्त की गई थी, बताना होगा।"[2]

यह द्रष्टव्य है कि अधिकांश रूप में इस बात पर जोर दिया गया था कि मूल कर्तव्यों का व्यापक प्रचार होना चाहिए। इसके लिए इसे शिक्षा के विषय का अंग होना चाहिए और शिक्षा के प्रत्येक प्रक्रम पर इनकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

मूल कर्तव्यों से लोगों को अवगत कराने के लिए उच्चतम न्यायालय ने भी उपयोगी सुझाव दिए हैं। **एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहाः जल और वायु के प्रदूषण के गम्भीर परिणामों की**

और प्राकृतिक पर्यावरण की संरक्षा करने और उसे सुधारने की आवश्यकता जिसे अनुच्छेद 51क (छ) के अधीन एक मूल कर्तव्य माना जाता है, की दृष्टि से केन्द्रीय सरकार का यह कर्तव्य है कि भारत भर की सारी शिक्षा संस्थाओं को यह निर्देश दे कि पहली दस कक्षाओं में प्रत्येक सप्ताह में कम से कम एक घंटा प्राकृतिक पर्यावरण की संरक्षा और उसके सुधार से संबंधित पाठ पढ़ाए जाएं जिसमें वन, झील, नदियां, वन्य जीवन भी हैं। केन्द्रीय सरकार उक्त प्रयोजन के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखवाएगी और उन्हें शिक्षा संस्थाओं को निःशुल्क वितरित करेगी। बालकों को स्वच्छता रखने की आवश्यकता पढ़ाई जानी चाहिए जो भीतरी और बाहरी दोनों की और गलियों की जिनमें वे रहते हैं की स्वच्छता से प्रारंभ हो। स्वच्छ वातावरण से स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिष्क बनता है। उन अध्यापकों को प्रशिक्षण, जो इस विषय को पढ़ाते हैं, दिया जाए। ऐसे प्रशिक्षण के लिए लघु अवधि के पाठ्यक्रमों को प्रारंभ करने पर भी विचार किया जा सकता है। इसे सारे भारत में किया जाए।" [1]

इस प्रकार मूल कर्तव्यों का पालन सुनिश्चित करने के लिए विधि की अनुशास्तियों से बढ़कर आवश्यक उपाय मूल कर्तव्यों का व्यापक प्रचार, प्रत्येक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम में उसका सम्मिलित किया जाना और सारे वृत्तिक कार्यों एवं सरकारी सेवकों से प्रशिक्षण में तथा इस प्रकार के अन्य कार्यक्रमों में मूल कर्तव्यों को समाविष्ट किया जाए। तात्पर्य यह है कि सारे प्रचार माध्यमों शिक्षा प्रशिक्षण एवं अन्य साधनों से मूल कर्तव्यों के संबंध में एक ऐसा वातावरण निर्मित किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति मूल कर्तव्यों का स्वेच्छा से पालन के लिए उद्यत हो।

नागरिकों के मूल कर्तव्यों के पालन की आवश्यकता और उसमें किए जाने वाले प्रयत्नों के बारे में संस्तुति करने के लिए सरकार ने उच्चतम न्यायायलय के (अवकाश प्राप्त) मुख्य न्यायमूर्ति वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति नामतः "नागरिकों के मूल कर्तव्यों पर समिति" नियुक्त की थी।

उक्त समिति ने मूल कर्तव्यों के बारे में लोगों को पूरी तरह अवगत कराने और उनके पालन के लिए किए जाने प्रयत्नों और उठाए जाने वाले कदमों की विस्तार में संस्तुति की है, जो एक पठनीय दस्तावेज है। यहाँ पूरी रिपोर्ट को उद्धृत करना संभव नहीं है तथापि उसके कुछ विशेष अंगों का उल्लेख किया जा सकता है।

समिति का कथन है कि मूल कर्तव्यों की वांछित प्रवर्तनीयता न केवल विधिक अनुशास्तियों का उपबंध करने से अधिक अच्छे तरीके से प्राप्त की जा सकती है अपितु इसे सामाजिक अनुशास्तियों के साथ जोड़ने से प्राप्त की जा सकती है और अनुकरणीय दृष्टांन्तो के माध्यम से इस का सम्पादन सुगम बनाया जा सकता है। विधिक अनुशास्तियों में विवशता का तत्त्व मानकों के पालन की स्वभाविक भावना से जुड़ जाने पर जिससे सामाजिक समर्थन मिलेगा, नागरिकों को इस काम में स्वेच्छा से भाग लेने को प्रेरित करेगा। इसलिए वास्तविक कार्य ऐसी रीतियां निकालना है जिनसें इन सारे पहलुओं का समावेश हो जिससे आम नागरिकों द्वारा और विशेष रूप से युवकों द्वारा कार्यक्रमों का तत्परता से पालन सुनिश्चित हो सके।

इसके लिए समिति ने समाज और सम्पूर्ण तंत्र के द्वारा अपनाए जाने वाले तरीकों को विस्तार में कहा है। यह कहा गया है कि मूल कर्तव्यों की संकल्पना और आचरण को समझा जाए और उसे हृदयंगम किया जाए। यह इस बात की आवश्यकता पर विशेष जोर देते हुए हो कि **एक समन्वयात्मक समाज जिसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो जो तनावों और हलचलों से मुक्त हो, निर्माण करना है।** मूल कर्तव्यों का पालन करने के प्रति **सम्मान नागरिकों को इस बात के लिए समर्थ बनावे कि वह मतभेदों और विषमताओं के प्रति समझबूझ, सहिष्णुता और सम्मान रखें।** निस्संदेह मूल कर्तव्यों के बारे में किसी वार्ता को मूल अधिकारों से पृथक् **नहीं किया जा सकता है अन्यथा यह दोनों के लिए अहितकर होगा।**

यह कहा गया है कि विद्यालय और अध्यापक की शिक्षा संस्थाओं में मूल कर्तव्यों की शिक्षा देने के लिए पाठ्यक्रमों की दिशा और दृष्टिकोण में मूलभूत उपान्तरण किए जाने की आवश्यकता है। संविधान की उद्देशिका और मूल कर्तव्यों पर अनुच्छेद 51क के 10 खंड (वे अब 11 हैं) विद्यालयों की सारी पाठ्य पुस्तकों, पूरक सामग्री एनसीईआरटी द्वारा और राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासनों में विद्यालयों के पाठ्य पुस्तक ब्यूरो द्वारा निकाले गए प्रकाशनों में मुद्रित किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 51क के प्रत्येक खंड में

अन्तर्निहित मूल्यों को उपाख्यानों में, विद्यालयों में प्रातःकालीन सभाओं में वार्त्ताओं के माध्यम से बताया जाना चाहिए। मूल कर्तव्यों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर सेमिनार, वाद–विवाद, प्रतियोगिता को विद्यालयों के सह पाठ्यक्रम कार्यकलापों का एक नियमित स्वरूप होना चाहिए।

विभिन्न प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में मूल कर्तव्यों को एक स्टेन्डर्ड में प्रदान किया जाना चाहिए जिसका मूल कर्तव्यों के खंडों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों से प्रकरणों एवं प्रसंगों की रूपरेखा बनाने के द्वारा पाठ्यक्रम में अन्तर्विष्ट होने वाली बातों की योजना बनाने में प्रयोग किया जा सके। अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का पुनःनिर्धारण होना चाहिए। मूल कर्तव्यों पर आधारित एक संवेदन ग्राह्य प्रयोग को सभी अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का अविछिन्न अंग बनाया जाना चाहिए जो राष्ट्रीय, राज्य और जनपद स्तर की संस्थाओं द्वारा आयोजित किया जाए। इस विषय पर बड़े रूप में अध्यापक पुनः अभिविन्यास कार्यक्रम की योजना बनाई जानी चाहिए।

यह अनुभव किया जा रहा है कि भारत की सम्प्रभुता, एकता और अखंडता को कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए सभी सेवा पूर्व अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में प्राथमिक और माध्यमिक दोनों में एन सी सी को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। उच्चतर और वृत्तिक शिक्षा में मूल कर्तव्यों को समाविष्ट किया जाना चाहिए।

पंचायत से लेकर संसद् तक जनता के प्रतिनिधियों को मूल कर्तव्यों से अवगत कराया जाना चाहिए क्योंकि नागरिकों के कर्तव्यों के रूप में उनके भी वे कर्तव्य हैं।

लोक प्रशासन और सिविल सेवकों को भी मूल कर्तव्यों के बारे में पूर्ण रूप से अवगत कराना चाहिए। सिविल सेवकों के प्रशिक्षण से संबंधित विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में समाविष्ट किए जाने के लिए मूल कर्तव्यों पर अनुपालनीय नमूना अंगीकृत किया जाना चाहिए। इससे मूल कर्तव्यों के प्रवर्तन में सहायता मिलेगी।

न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में समिति ने संस्तुति की कि एक न्यायिक अकादमी स्थापित की जानी चाहिए जो न्यायाधीशों की निरन्तर शिक्षा के लिए सुविधाएं प्रदान करें, सांविधानिक मूल्यों और मूल कर्तव्यों पर उनका ध्यान आकर्षित करे, अधिवक्ता वर्ग और न्यायाधीशों के बीच विचारों के रचनात्मक आदान प्रदान को बढ़ावा दे और न्यायालय में न्यायिक कारवार करने के प्रबंधन की आधुनिक तकनीक के प्रयोग को सुगम बनावें, अधिवक्ता परिषदें और उनसे सम्बद्ध अधिवक्ता संघों को यह सुनिश्चित करने के उत्तरदायित्व में भाग लेना होगा कि उनके सदस्य मूल कर्तव्यों का पालन करने के मूल्य को समझते ही नहीं हैं अपितु अपना वृत्तिक कार्य करते समय उन्हें लागू करने का प्रयत्न करते हैं।

कारोबार और उद्योग

कारोबार करने वालों और उद्योगपतियों का भी यह दायित्व है कि संविधान द्वारा आरोपित कर्तव्यों का चाहे वे निहित हों या सुव्यक्त हों, पालन किया जाए। इसलिए अपने कारोबार या उद्योग के प्रबंध के सम्बन्ध में आचरण संबंधी मानकों को विकसित करने में इस बात का ध्यान रखें कि मूल कर्तव्यों का पालन होता है।

मीडिया

मीडिया का विद्यमान समय में भारी दायित्व है कि वह राष्ट्र का मार्ग दर्शन करे और वह प्रत्येक नागरिक को संविधान में सन्निविष्ट मूल कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाए।

विद्युत और मुद्रण मीडिया को सम्मिलित करते हुए मीडिया के सशक्त प्रभाव का उपयोग सभी स्तर के नागरिकों को मूल कर्तव्यों का संदेश पहुँचाने में दिए उपयोग में लाया जा सकता है। मीडिया को ऐसे कार्यक्रमों को बहुत स्पष्टता से दर्शित करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए जो राष्ट्रीय अखंडता, संस्कृति और मूल्यों और पर्यावरण से संबंधित कार्यकलापों को समर्थन देते हैं अथवा बढ़ावा देते हैं।

इस प्रकार देश में उपलब्ध सारे प्रचार माध्यमों से मूल कर्तव्यों को प्रचारित करके और स्वंय नागरिक और देश के हित में उनकी उपादेयता का बोध कराने से ही मूल कर्तव्यों का पालन सुनिश्चित किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में मत व्यक्त किया है कि मूल कर्तव्यों के पालन के लिए देश की शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त सुधार करना होगा। अबिनाश नागरा बनाम नवोदय विद्यालय समिति [1] में उक्त न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "संविधान का अनुच्छेद 45 सरकार को यह आदिष्ट करता है:"

"बालकों के लिए निःशुल्क और शिक्षा का उपबंध – राज्य इस संविधान के प्रारंभ के दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरा करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा"।

इस न्यायालय ने यह भी निर्धारित किया है कि शिक्षा का अधिकार एक मूल अधिकार है और राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी एजेन्सियों अथवा प्राइवेट संस्थाओं के माध्यम से विधि और विनियमों अथवा स्कीम के अनुसार शिक्षा को आयोजित करे। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कहा गया है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क माध्यमिक शिक्षा और विश्व विद्यालय की शिक्षा उपयुक्त स्टेट्यूटों और स्कीमों के अनुसार देने की व्यवस्था करे। भारत संघ ने माध्यमिक शिक्षा के प्रक्रम तक अनुशासन और उच्चतर शिक्षा देने के लिए नवोदय विद्यालय स्कीम को अपनाया था। मूल कर्तव्यों का अध्याय IVक अनुच्छेद 51क में यह अनुकल्पित करता है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा के वह संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे, स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे, भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा और उसे अक्षुण्ण रखे; नागरिक एक कर्तव्य के रूप में देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे; भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग या आधारित सभी भेदभावों से परे हो; नागरिक एक कर्तव्य के रूप में ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं; देश की सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे; प्रकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है रक्षा करे और उनका, संवर्द्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे; प्रत्येक नागरिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद तथा ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे; सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे; व्यक्गित तथा सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरतंर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाई को छू ले।

इन आदर्शों को बढावा देना और उन्हें हृदयंगम कराने के लिए, बच्चों के ग्रहणशील मस्तिष्कों को बचपन से ही इसे बता कर किया जाना चाहिए। महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड आफ सेकन्डरी एंड हायर एजूकेशन बनाम के0एस0 गांधी में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि शिक्षा का अधिकार एक मूल अधिकार है यह कहा गया कि मनुष्यों की नैसर्गिक क्षमता किसी भी प्रकार समान नहीं हैं। **शिक्षा का तात्पर्य एक प्रक्रिया है जो एक अच्छे चरित्र निर्माण के लिए बालक के बौद्धिक, नैतिक और शारिरिक विकास के लिए प्रावधान करे; सामाजिक हैसियत के प्रति संचलन; समता प्राप्त करने का अवसर और सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए जिसमें लोगों का आवश्यक जागरण भी सम्मिलित है, एक सुदृढ़ उपकरण हो। शिक्षा बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक लोकतंत्र को बढ़ाती है। शिक्षा अच्छी नागरिकता की आधारशिला रखती है और बच्चे को बौद्धिक और सांस्कृतिक मूल्यों की उपलब्धि के प्रयास में इनके लिए जागृत करने का मुख्य उपकरण है जो बालक को बाद में वृत्तिक प्रशिक्षण के लिए तैयार करने को और उसे नए वातावरण के मेल में बैठने में सहायता करता है।** इसलिए शिक्षा को हमारे विकासशील राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक आवश्यकताओं की सहसंबंधी होना चाहिए जो पंथ निरपेक्ष मूल्यों, जातिवाद, भाषावाद, पांथिक कट्टरता के अवरोध को तोड़े और सामाजिक परिवर्तन के एक उपकरण के रूप में कार्य करे। **शिक्षा उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए बौद्धिक ज्योति को प्रज्वलित करती है; युवकों के मस्तिष्कों को समर्थ बनाती है, जिससे वह उसे अंधविश्वास की अपेक्षा तर्क से अपनी प्रतिभा को तीव्र बनाने से बौद्धिक ऊँचाइयों पर पहुँचे और उसे सामाजिक समता और व्यक्ति की गरिमा के लिए प्रयास करने की भावना प्रदान करती है"।**

अध्याय – 20

उपसंहार

अनेक शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् भारत सन् 1947 में 15 अगस्त को स्वतंत्र हुआ किन्तु विभाजित हो कर और अपना संविधान निर्मित करके 1950 में 26 जनवरी को गणतन्त्र राज्य बना। इस स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय आंदोलन एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियां दोनों थे। राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्शों को आधारभूत रखते हुए और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक विचारधारा को ध्यान में रखकर भारत के संविधान का निर्माण हुआ। इस प्रकार अन्य बातों के साथ संविधान में नागरिकों के अधिकार जिन्हें मूल अधिकार कहा गया है प्रदान किए गए, तथापि नागरिकों के कोई कर्तव्य विहित नहीं किए गए।

यह उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों को, जिनमें भारत भी है जिन्होंने द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की है आज राष्ट्र निर्माण के कठिन कार्य का सामना करना पड़ रहा है। **यद्यपि भारत में सांस्कृतिक एकता आदि काल से रही है, भारत ने अपनी स्वतंत्रता के आंदोलन के दौरान एक सुदृढ़ राष्ट्रीय भावना विकसित की थी। तथापि एक वर्ग के लोगों द्वारा मज़हब के आधार पर एक अलग राज्य की मांग और अंततः भारत के दो देशों के विभाजन से उसे भारी धक्का लगा।** भारत की स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् भी विध्वसंक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुईं। अतएव राष्ट्र निर्माण के कार्य को प्रथामिकता और महत्त्व देना आवश्यक था। राष्ट्र निर्माण में एकता की भावना बढ़ाना और उसे घनीभूत करना तथा उसे एक ठोस समूह में बांधने की प्रक्रिया आती है। भारतीय संविधान में इस संबंध में पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं। इसी दृष्टि से विश्व के अनेक देशों के संविधानों में नागरिकों के कर्तव्य का प्रावधान किया गया जो राष्ट्र की एकता, अखंडता देश की रक्षा तथा नागरिक की बौद्धिक और नैतिक उन्नति तथा समाज के हितों की भी संरक्षा के विचार से थे। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राष्ट्र की एकता और अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सामाजिक विभाजन की अनेक बातें और राष्ट्र विघटनकारी प्रवृत्तियों उभरने लगीं। इसे दृष्टि में रखकर नागरिकों के कर्तव्यों को विहित करने का विचार आया और संविधान के बयालीसवें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में एक नया भाग 4क और उसमें एक अनुच्छेद 51क अन्तः स्थापित किया गया जिससे नागरिकों के 10 कर्तव्य विहित किए गए। संविधान के छियासीवें संशोधन अधिनियम, 2001द्वारा उसमें एक और कर्तव्य जोड़ा गया है। इस प्रकार अब संविधान में 11 मूल कर्तव्य है। इनका मुख्य ध्येय राष्ट्र की एकता और अखंडता को कायम रखना और उसकी रक्षा करना और राष्ट्रीय हितों की रक्षा की प्रेरणा देना और सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से व्यक्तियों का बौद्धिक तथा नैतिक उत्थान है।

एक उल्लेखनीय है कि सम्प्रति इन कर्तव्यों को विधि द्वारा लागू किए जाने वाला नहीं बनाया गया है। इनके प्रचार और पालन के लिए संसद् में उक्त संशोधन पर बहस के दौरान अनेक सुझाव दिए गए थे। किन्तु उन्हें लागू नहीं किया जा सका है तथापित उच्चतम न्यायालय ने उन्हें इस रूप में लागू करना प्रारंभ किया है कि संविधान तथा कानूनों के निर्वचन (interpretation) में उन्हें एक सहायक के रूप में लिया जा रहा है। सरकार ने मूल कर्तव्यों पर एक समिति गठित की थी जिसने मूल कर्तव्यों के प्रचार और पालन के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट दी है, तथापि उस पर अभी तक कोई कार्रवाई दृष्टिगोचर नहीं हो रही है।

यह उल्लेखनीय है कि कर्तव्यों के सांविधानिक उपबंध होने के साथ ही साथ उनके पीछे सामाजिक अनुमोदन हो तो उनके पालन किए जाने के लिए प्रभावी प्रेरणा मिलेगी। इसके लिए कर्तव्यों को नैतिक आधार भी प्रदान करना होगा। नैतिकता का निर्माण सांस्कृतिक मूल्यों की मान्यता से होता है। पीछे यह उल्लेख किया जा चुका है कि मूल कर्तव्य भारतीय संस्कृति के स्थापित मूल्यों एवं मानकों को ही समाविष्ट करते हैं। इन सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मूल्यों का व्यापक प्रचार प्रसार होने से मूल कर्तव्यों को वह नैतिक आधार प्राप्त होगा जो स्वेच्छा से उनका पालन करने को प्रेरित करेगा।

दूसरी ओर, जो सुझाव उक्त संशोधन पर बहस के दौरान संसद् में उच्चतम न्यायालय द्वारा और मूल्य कर्तव्यों पर समिति द्वारा इसके प्रचार और पालन के लिए दिए गए हैं उनको पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि उन सुझावों में से कोई भी अभी तक लागू नहीं किया गया है। मूल कर्तव्यों को प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों के एक पाठ के रूप में रखा जाना चाहिए। शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों में भी पुस्तक के प्रारंभिक पृष्ठों पर मूल कर्तव्यों को अंकित किया जाना चाहिए। सार्वजनिक स्थानों पर काष्ठ या शिला पट्टों पर क्षेत्रीय भाषाओं में उन्हें लिखकर या उत्कीर्ण कर लगाया जाए जैसे अशोक ने बुद्ध धर्म के उपदेशों को लाटों पर खुदवाकर जगह–जगह लगवाया था। देश के समाचार पत्रों के मुख पृष्ठों पर प्रतिदिन मूल कर्तव्यों को मुद्रित किया जाए। टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले समाचारों या अन्य उपयुक्त कार्यक्रमों में या तो प्रारंभ में या अंत में या बीच में विराम देकर मूल कर्तव्यों को घोषित किया जाए। शिक्षा संस्थाओं, न्यायालयों एवं अन्य कार्यालयों में ऐसे स्थानों पर मूल कर्तव्यों के पट्ट लगाए जाएं जो दृष्टि आकर्षित करें। मूल कर्तव्यों के प्रचार में सर्वाधिक काम करने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा मीडिया को पुरस्कृत किया जाए। इस हेतु राज्य एक योजना का निर्माण करे और दृढता से इसे लागू करे। इसके साथ ही प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा मूल कर्तव्यों के पालन के आचरण द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किया जाए। एक ऐसा वातावरण निर्मित किया जाए। जिसमें लोग मूल कर्तव्यों से अवगत हों और उसके पालन को स्वेच्छा से तत्पर हों। यह राष्ट्र निर्माण का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के साथ ही देश के सामाजिक, आर्थिक उत्थान और व्यक्तियों के बौद्धिक नैतिक और आध्यात्मिक उन्नयन में भारी योगदान करेगा।

जय हिन्द

प्राक्कथन

सन् 1976 ई0 में भारत के संविधान के 42वें संशोधन द्वारा उसमें भारत के नागरिकों के दस मूल कर्तव्य संविधान के अनुच्छेद 51क के रूप में जोड़े गए थे, किन्तु अनेक दशक बीत जाने के पश्चात् भी उन मूल कर्तव्यों के पालन के प्रति कोई सजगता दिखाई नहीं दी। इस पृष्ठभूमि में 17 दिसम्बर, 1997 को सांस्कृतिक गौरव संस्थान का एक न्यास के रूप में पंजीकरण हुआ। इस संस्थान की स्थापना से संबद्ध चिंतकों और विचारकों के ध्यान में देश की ऐसी अवस्था थी जिससे सड़न के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और वे अब भी विद्यमान हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

- सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वाभिमान में भारी पतन।
- मानवीय मूल्यों में चिंताजनक ह्रास।
- धर्म का निर्देशक प्रभाव, कर्तव्य–परायणता का भाव, विधि के प्रति सम्मान, ईश्वरत्व के प्रति श्रद्धाभाव आदि का तेज़ी से लुप्त होना।
- स्वाधीनता का अर्थ अनैतिक कार्यों के लाइसेंस का रूप लेना।
- आत्मारहित राजनीतिबाज़ ऊँचे पदों पर चुने जाने के लिए कुछ भी करने को तैयार।
- वोट बैंक को बनाए रखने के लिए घृणा फैलाने का अभियान चलाया जाना।
- छोटी–मोटी राजनीतिक दुश्मनियों के द्वारा गाँवों के भाई–चारे को बुरी तरह कुचला जाना।
- समय की कसौटी पर खरे उतरे हमारे वैदिक आदर्शें की खिल्ली उड़ाना, प्रगति और आधुनिकता की पहचान बन जाना तथा हमारी प्राचीन मूल्य प्रणाली, हमारी आचरण संहिता और संस्कृति के पालन को पिछड़ेपन का और प्रतिक्रियावादी रूप दिया जाना।
- बहुसंख्यक समुदाय–हिन्दुओं की निन्दा करना, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोगों के लिए एक फैशन सा बन जाना।
- शैक्षिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम स्वामी विवेकानन्द के इस उद्घोष "मानव निर्मातृ शिक्षा और राष्ट्रनिर्माता मानव" से दूर होना।
- भारत भूमि का जो **'सत्यमेव जयते' की भूमि थी** विश्व के सबसे अधिक भ्रष्ट देशों में शामिल होना।
- एक सुसंगठित अभियान, जो बाहर से नियंत्रित है और जिसे भीतर से हवा और ईंधन दिया जा रहा है, उसके चलाए जाने के स्पष्ट, साक्ष्य मिले हैं, जिससे भारत की संप्रभुता, एकता, अखण्डता और सुरक्षा को चुनौती देने के साथ–साथ भारत को अस्थिर और यहाँ तक कि खण्डित किया जा सके।
- भारत को राष्ट्रों के समुदाय में सामान्यतः कम सम्मान मिलता है। दूषित सूचना, अपप्रचार, असत्य सूचनाओं का एक योचनाबद्ध अभियान उन विषयों के विरुद्ध चल रहा है जो राष्ट्रीय स्वाभिमान को संजीवनी देने का काम दे सकते हैं।
- विदेशी और देशी जन–संचार माध्यमों (दूरदर्शन, विडियो आदि) में विदेशी जीवन शैलियों (टूटे हुए परिवार, बडों का अपमान, विवाहेतर संबंध, नशीली दवाइयाँ और हिंसा) को बड़े गर्व से दिखाया जा रहा है। यह भुला दिया गया है कि जब कोई मज़हब किसी अन्य मत के अनुयायियों का मत परिवर्तन का काम

करता है तो वह मज़हब की सीमाओं को लाँघता है और राजनीति के खतरनाक साम्राज्य में प्रवेश करता है।

● स्वदेशी परम्पराओं और रीति–रिवाज़ों विशेषतः वनवासियों और गिरिजनों के रीति–रिवाज़ों के प्रति सम्मान का लोप हो रहा है जबकि वे इस पुण्य–भूमि के मूल्यवान् पुत्रों और पुत्रियों से किसी भी तरह कम मूल्यवान् नहीं हैं। वस्तुतः वे हमारे विलक्षण राष्ट्रीय स्वभाव के अभिन्न अंग हैं।

● उन संस्थाओं को योजनाबद्ध रूप से नष्ट किया जा रहा है जो लोकतंत्र को सार्थक बनाती हैं। नौकरशाही को साहसहीन बना दिया गया है और उनको राजनीति का मोहरा बनाया गया है जब कि राजनीति अपराधियों के चंगुल में फँस गई है।

इस पतन को रोकने की आवश्यकता बताने की आवश्यकता नहीं है। सांस्कृतिक गौरव संस्थान का जन्म मत–निर्माता निकायों का एक समूह तैयार करने के लिए हुआ था जिससे अराजकता और अव्यवस्था के बढ़ाव को रोका जा सके और राष्ट्र के प्रति जवानों और बूढ़ों के जो कर्तव्य हैं, उन्हें उनकी याद कराने के लिए क्षेत्र में उतारा जा सके ताकि वे देवभूमि भारत के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें।

उल्लेखनीय है कि पुस्तक के लेखक न केवल कानून में पी एच. डी. धारी तथा वरिष्ठ विधि विशेषज्ञ हैं अपितु भारतीय संस्कृति के बहुपठित विद्वान् हैं, जो स्वयं भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के जीवंत रूप हैं।

हमारी जानकरी के अनुसार इन कर्तव्यों का विवेचन करने वाली कोई पुस्तक अभी तक भारत की किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुई है।

इस पृष्ठभूमि में भारत के नागरिकों के कर्तव्यों का विवेचन करने वाली यह पुस्तक विद्वज्जनों और चिंतकों के लिए न केवल प्रेरणादायक होगी बल्कि एक प्रकाश स्तंभ की भांति सिद्ध होगी, ऐसा हमारा पक्का विश्वास है।

2 पौष, सं. 2062 वि.
17.12.2005 ई.

विनीत

डॉमहेशचन्द्र
(महामंत्री)

.